

द्वैमासिक

जुलाई - अगस्त 2014

20 रुपये

मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान

- उतरती "मोदी लहर" और फासीवाद से मुकाबले की गम्भीर होती चुनौती
- 'लव जेहाद' के शोर के पीछे की सच्चाई
- पंजाब : जनसंघर्षों की कुचलने की नापाक कोशिश
- गाजा में इजरायल की, हार और आगे की सम्भावनाएँ
- इस्लामिक स्टेट : अमेरिकी साम्राज्यवाद का नया भस्मासुर
- पाकिस्तान का संकट
- भगतसिंह के लिए एक गद्यात्मक सम्बोध-गीति - कात्यायनी
- विज्ञान के इतिहास का विज्ञान
- मुक्तिबोध का लेख 'नौजवान का रास्ता'
- कविताएँ

शहीदेआज़म भगतसिंह के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर

नौजवान भारत सभा, लाहौर के घोषणापत्र से कुछ बेहद प्रासंगिक अंश

धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। "जो चीज़ आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।" इसी प्रकार की और भी बहुत सी कमजोरियाँ हैं जिन पर हमें विजय पानी है। हिन्दुओं का दकियानूसीपन और कट्टरपन, मुसलमानों की धर्मान्धता तथा दूसरे देशों के प्रति लगाव और आम तौर पर सभी सम्प्रदायों के लोगों का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता है। इस काम के लिए सभी समुदायों के क्रान्तिकारी उत्साह वाले नौजवानों की आवश्यकता है।

देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से होगा – "क्रान्ति जनता द्वारा, जनता के हित में।" दूसरे शब्दों में, 98 प्रतिशत के लिए स्वराज्य। स्वराज्य, जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं, बल्कि जनता के लिए भी। यह एक बहुत कठिन काम है। यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत से सुझाव दिये हैं लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उसपर अमल करने का किसी ने भी साहस नहीं किया। विस्तार में गये बगैर हम यह दावे से कह सकते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नवयुवकों की भाँति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गाँवों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रान्ति वास्तव में क्या होगी। उन्हें समझाना पड़ेगा कि आनेवाली क्रान्ति का मतलब केवल मालिकों की तब्दीली नहीं होगा। उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म – एक नयी राजसत्ता। यह एक दिन या एक वर्ष का काम नहीं है। कई दशकों का अद्वितीय आत्मबलिदान ही जनता को उस महान कार्य के लिए तत्पर कर सकेगा और इस कार्य को केवल क्रान्तिकारी युवक ही पूरा कर सकेंगे।

युवकों के सामने जो काम है, वह काफी कठिन है और उनके साधन बहुत थोड़े हैं। उनके मार्ग में बहुत सी बाधाएँ भी आ सकती हैं। लेकिन थोड़े किन्तु निष्ठावान व्यक्तियों की लगन उन पर विजय पा सकती है। युवकों को आगे जाना चाहिए। उनके सामने जो कठिन एवं बाधाओं से भरा हुआ मार्ग है, और उन्हें जो महान कार्य सम्पन्न करना है, उसे समझना होगा। उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि "सफलता मात्र एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।" ... नौजवान दोस्तो, इतनी बड़ी लड़ाई में अपने आपको अकेला पाकर हताश मत होना। अपनी शक्ति को पहचानो। अपने ऊपर भरोसा करो। सफलता आपकी है।

इतालवी पुनरुत्थान के प्रसिद्ध विद्वान मैज़िनी ने एक बार कहा था, "सभी महान राष्ट्रीय आन्दोलनों का शुभारम्भ जनता के अविख्यात या अनजाने, गैरप्रभावशाली व्यक्तियों से होता है, जिनके पास समय और बाधाओं की परवाह न करने वाला विश्वास तथा इच्छा-शक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता।" जीवन की नौका को लंगर उठाने दो। उसे सागर की लहरों पर तैरने दो और फिर –

लंगर ठहरे हुए छिछले पानी में पड़ता है।

विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करो

जहाँ ज्वार हर समय ताज़ा रहता है

और शक्तिशाली धाराएँ स्वतन्त्र होती हैं –

वहाँ अनायास, ए नौजवान कोलम्बस

सत्य का तुम्हारा नया विश्व हो सकता है।

नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक, गम्भीरता से, शान्ति और सन्न के साथ सोचें। उन्हें चाहिए कि वे भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उन्हें अपने आपको बाहरी प्रभावों से दूर रहकर संगठित करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौक़े पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ "सेवा, त्याग, बलिदान" को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिये कि "राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।"

आह्वान के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विचारविन्दु

► “आह्वान” विपर्यय के इस कठिन अँधेरे दौर में क्रान्ति के नये संस्करण की तैयारी के लिए युवा वर्ग का आह्वान करता है। यह एक नूतन क्रान्तिकारी नवजागरण और प्रबोधन का शंखनाद करता है। यह नयी क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति के निर्माण के लिए, उसकी मार्गदर्शक वैज्ञानिक जीवनदृष्टि और इतिहासबोध की समझ कायम करने के लिए और भारतीय क्रान्ति के रास्ते की सही समझदारी कायम करने के उद्देश्य से विचार-विनिमय और बहस-मुबाहसे के लिए आम जनता के विवेकशील बहादुर युवा सपूतों को आमन्त्रित करता है। “आह्वान” क्रान्ति की आत्मा को जागृत करने की ज़रूरत का अहसास है। यह एक नयी क्रान्तिकारी स्फिरिट पैदा करने की तड़प की अभिव्यक्ति है। लोग यदि लोहे की दीवारों में कैद नशे की गहरी नींद सो रहे हैं, तब भी हमें लगातार आवाज़ लगानी ही होगी। नींद में घुट रहे लोगों के कानों तक लगातार पहुँचती हमारी आवाज़ कभी न कभी उन्हें जगायेगी ही। भूलना नहीं होगा कि एक चिंगारी सारे जंगल को आग लगा सकती है। “आह्वान” ऐसी ही एक चिंगारी बनने को संकल्पबद्ध है।

► “आह्वान” ज़िन्दगी के इस दमघोंटू माहौल को बदलने के लिए तमाम ज़िन्दा लोगों का आह्वान करता है। यह उन सभी का आह्वान करता है जो सही मायने में नौजवान हैं। जिनमें व्यक्तिगत स्वार्थ, कायरता, दुनियादारी, धन लिप्सा, कैरियरवाद और पद-ओहदे-हैसियत-मान्यता की गलाकाटू प्रतिस्पर्धा के खिलाफ़ लड़ने का माद्दा और ज़िद है, जिनकी रगों में उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है। जो न्याय, सौन्दर्य, प्रगति और शौर्य के पुजारी हैं। “आह्वान” जनता की सेवा में लग जाने के लिए, मेहनतकश अवाम में घुलमिलकर उसकी मुक्ति का परचम थाम लेने के लिए ऐसे ही नौजवानों का आह्वान करता है। सामाजिक क्रान्तियों की कठिन शुरुआत की चुनौतियों को स्वीकारने के लिए पहले जनता के बहादुर युवा सपूत ही आगे आते हैं। इतिहास के रथ के पहिए नौजवानों के उष्ण रक्त से लथपथ हुआ करते हैं।

इस अंक में

पाठक मंच	2
अपनी बात	
उतरती “मोदी लहर” और फासीवाद से मुकाबले की गम्भीर होती चुनौती	3
सामयिकी	
‘लव जेहाद’ के शोर के पीछे की सच्चाई – कात्यायनी	5
लाल किले से मोदी का लोकरंजकतावादी भाषण	
...थोथा चना बाजे घना – मीनाक्षी	8
पंजाब : जनसंघर्षों को कुचलने की नापाक कोशिश – लखविन्दर	20
मालिन गाँव हादसा – प्राकृतिक नहीं पूँजी-जनित आपदा – सुनील	59
ब्राज़ील में फुटबाल वर्ल्ड कप का विरोध – सनी	60
मोदी की जापान यात्रा के निहितार्थ – श्वेता	61
भारत में वॉलमार्ट – वारुणी	63
विश्व पटल पर	
गाज़ा में इज़रायल की हार और आगे की सम्भावनाएँ – कात्यायनी	12
इस्लामिक स्टेट : अमेरिकी साम्राज्यवाद का नया भस्मासुर – आनन्द	15
पाकिस्तान का वर्तमान संकट और शासक वर्ग के	
गहराते अन्तरविरोध – तपीश	40
यूक्रेन विवाद के निहितार्थ – विराट	44
डोन हमले – अमेरिकी हुक्मरानों का खूँखार चेहरा – लखविन्दर	46
भगतसिंह के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर	
भगतसिंह के लिए एक गद्यात्मक सम्बोध-गीति – कात्यायनी	23
नौजवान भारत सभा, लाहौर के घोषणापत्र से कुछ बेहद प्रासंगिक अंश	49
इतिहास	
प्रथम विश्वयुद्ध के साम्राज्यवादी नरसंहार के सौ वर्ष – विराट	30
विज्ञान	
विज्ञान के इतिहास का विज्ञान – सनी	36
साहित्य	
मुक्तिबोध के 50वें स्मृतिदिवस के अवसर पर	
लेख / नौजवान का रास्ता	51
कविता / भूल-गुलती	56
फ़िलिस्तीनी कवि समीह अल-कासिम की स्मृति में दो कविताएँ	57
गतिविधि बुलेटिन	
पंजाब में काले क़ानून के खिलाफ़ संयुक्त मोर्चा	64

मुक्तिकामी छात्रों- युवाओं का आह्वान

वर्ष 7 अंक 4
जुलाई-अगस्त 2014

सम्पादक
अभिनव
सह-सम्पादक
कविता
सज्जा
रामबाबू

इस अंक का मूल्य बीस रुपये
वार्षिक सदस्यता (डाक व्यय सहित) :
160 रुपये
दो वर्ष की सदस्यता : 320 रुपये
पाँच वर्ष की सदस्यता : 500 रुपये
आजीवन सदस्यता : 2000 रुपये

सम्पादकीय कार्यालय : बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली, फ़ोन : 011-64623928, 9540436262

ईमेल : ahwan.editor@gmail.com वेबसाइट : ahwanmag.com फ़ेसबुक : https://www.muktikamiahwan

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक अभिनव सिन्हा द्वारा रुचिका प्रिण्टर्स, I/10665, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

से मुद्रित कराकर बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094 से प्रकाशित किया।

पाठक मंच

प्रिय साथी,

‘आह्वान’ पत्रिका को मैं लम्बे समय से पढ़ रहा हूँ और यह पत्रिका मुझे लगातार प्रेरित करती रही है, न्याय व संवेदना के नये मूल्य दे रही है। आज पूरे विश्व में आर्थिक संकट जिस दर से बढ़ रहा है, मन्दी व महँगाई की मार से जनता की बहुत बड़ी संख्या बेरोज़गारों की फौज में शामिल होने को मजबूर है, भुखमरी और कुपोषण झेलने को मजबूर है। ऐसे में तमाम फासीवादी ताकतें जनता को बरगलाने और नफ़रत के बीज बोने में कामयाब हो रही हैं। दुनिया के तमाम देशों में फासीवादी उभार हो रहा है। अपने देश में भी हर किस्म के धार्मिक कट्टरपन्थी समुदायों एवं संगठनों चाहे वह शिवसेना हो, आरएसएस हो या भाजपा हो या सारे गैर सरकारी संगठन, सब मिलकर मजदूर वर्ग को जाति, धर्म, क्षेत्र के नाम पर बाँटकर रखने में कामयाब हो रहे हैं। अपने देश में मजदूर वर्ग की तरफ से ऐसी कोई पार्टी या संगठित ताकत नहीं दिखायी पड़ रही जो इन फासीवादियों को मुँहतोड़ जवाब दे सके।

ऐसे समय में ‘आह्वान’ पत्रिका रूढ़िवादी विचारों से बहुत ही जुझारू संघर्ष कर रही है और छात्रों-नौजवानों को क्रान्तिकारी विचारों से लैस कर रही है। मेरी पूरी कोशिश यही रहती है कि ‘आह्वान’ के विचारों को समझकर अपने दोस्तों व साथियों को सही क्रान्तिकारी विचारों से अवगत कराऊँ। सितम्बर-दिसम्बर 2013 का फासीवाद-विरोधी अंक मुझे बहुत पसन्द आया। मैंने इस अंक के सारे लेख बहुत ही लगन से पढ़े और मेरी यह धारणा बनी कि सही क्रान्तिकारी विचार मुझे इस पत्रिका से ही मिल सकते हैं।

साथी, मैं एक मजदूर हूँ और गुड़गाँव की एक कम्पनी में नौकरी करता हूँ। आज के समय में संकट और बेरोज़गारी जो कि दिन-प्रतिदिन मेरी आँखों के सामने नंगी सच्चाई की

तरह उपस्थित है, इसे मैंने कविता के रूप में व्यक्त किया है। उम्मीद करता हूँ कि ये विचार ‘आह्वान’ के लायक होंगे।

काम की तलाश में घूम रहे हैं लोग
एक मौका पाने को तरस रहे हैं लोग
फैक्ट्रियों, दुकानों, कारखानों में
हर जगह पूछ रहे हैं लोग
क्या कोई जगह ख़ाली है?
सड़कों, चौराहों, गलियों में घूमते हुए मिल जाते हैं लोग
काम की तलाश में बेहाल परेशान लोग।
समझ में नहीं आता कि इतनी बड़ी मजदूर आबादी
का ही भाग्य क्यों मारा जाता है?
भगवान इन्हीं से क्यों नाराज़ रहता है?
एकबारगी तो मन बगावत करके कहता है—
कोई भगवान नहीं होता है
हैरान-परेशान लोग
एक दूसरे की जाति और धर्म को दोष देते लोग
रिश्तेदारों और बुजुर्गों को दोष देते लोग
‘ऐसा होता, ऐसा न होता
तो बहुत अच्छा होता’ में फँसे लोग।
यही तो हैं वे लोग
जिन तक पहुँचाना है, लेकर जाना है
इन विचारों को, कि
यह व्यवस्था ही जड़ है सारी परेशानियों की
लूट, मुनाफ़ा और गलाकाटू होड़ की व्यवस्था है
जल्द से जल्द बदल डालो इस व्यवस्था को
नहीं तो यूँ ही हैरान-परेशान रहेंगे लोग।

- आनन्द, गुड़गाँव

आह्वान’ के पाठकों से एक अपील

दोस्तो,

“आह्वान” सारे देश में चल रहे वैकल्पिक मीडिया के प्रयासों की एक कड़ी है। हम सत्ता प्रतिष्ठानों, फण्डिंग एजेंसियों, पूँजीवादी घरानों एवं चुनावी राजनीतिक दलों से किसी भी रूप में आर्थिक सहयोग लेना घोर अनर्थकारी मानते हैं। हमारी दृढ़ मान्यता है कि जनता का वैकल्पिक मीडिया सिर्फ़ जन संसाधनों के बूते खड़ा किया जाना चाहिए।

एक लम्बे समय से बिना किसी किस्म का समझौता किये “आह्वान” सतत प्रचारित-प्रकाशित हो रही है। आपको मालूम हो कि विगत कई अंकों से पत्रिका आर्थिक संकट का सामना कर रही है। ऐसे में “आह्वान” अपने तमाम पाठकों, सहयोगियों से सहयोग की अपेक्षा करती है। हम आप सभी सहयोगियों, शुभचिन्तकों से अपील करते हैं कि वे अपनी ओर से अधिकतम सम्भव आर्थिक सहयोग भेजकर परिवर्तन के इस हथियार को मजबूती प्रदान करें। आप — 1. आजीवन सदस्यता ग्रहण कर सहयोग कर सकते हैं। 2. अपने मित्रों को “आह्वान” की सदस्यता दिलवायें। 3. “आह्वान” के मद में आर्थिक सहयोग भेजें। और “आह्वान” के वितरण में लगे सहयोगियों से अपील है कि वे पत्रिका की भुगतान राशि यथासम्भव शीघ्र प्रेषित कराने की व्यवस्था करें।

आप अपना सहयोग/सदस्यता राशि निम्नलिखित खाता नं. में भी प्रेषित कर सकते हैं। यह ज़रूरी है कि आर्थिक सहयोग भेजते समय हमें सूचित अवश्य कर दें।

प्रति — मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान, बैंक ऑफ़ बड़ौदा, खाता नं. — 21360100010629

साभिवादन,
सम्पादक

उतरती “मोदी लहर” और फासीवाद से मुकाबले की गम्भीर होती चुनौती

“मोदी लहर”, “अच्छे दिन” आदि जैसे शब्द अब राजनीतिक गलियारों और यहाँ तक कि रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के कुछ लोकप्रिय चुटकुलों में तब्दील हो चुके हैं। मिसाल के तौर पर, अब दुर्वस्था में पड़े किसी व्यक्ति को अक्सर लोग यह कहते पाये जा सकते हैं, “इसके तो अच्छे दिन आ गये!” उसी प्रकार, भारतीय टीम के इंग्लैण्ड दौरे पर टेस्ट श्रृंखला पर हार पर सोशल मीडिया पर यह लतीफ़ा खासा चल निकला था कि भारतीय टीम की हालत तो “मोदी लहर” जैसी हो गयी, हल्ला ख़ूब मचा पर पटाखा एकदम फुस्स निकला। लगता है कि इसी प्रकार नये राजनीतिक और सामाजिक जीवन के चुटकुलों और मुहावरों की रचना होती है! भारतीय जनता पार्टी के कई पिताओं में से एक जनता पार्टी के बारे में भी 1980 के दशक से इसी प्रकार चुटकुले बने थे। मिसाल के तौर पर, पहले टुकड़े-टुकड़े कर डालने के लिए इस रूपक का इस्तेमाल होता था, “अभी तुझे जनता पार्टी बना दूँगा!” इन नित्यप्रति रचित होते रचनात्मक चुटकुलों के पीछे की राजनीतिक परिघटना पिछले 100 दिनों में ही अभूतपूर्व रफ़्तार से परत-दर-परत खुलती गयी है। भारतीय लोकतन्त्र के इतिहास में किसी भी चुनी गयी सरकार की लोकप्रियता के गिरने की दर में मोदी सरकार ने निश्चित तौर पर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

मोदी हर प्रकार के हथकण्डे अपना कर अपनी जनविरोधी नीतियों के चरित्र को छिपाने की कोशिश कर रहा है। चुनाव के पहले मोदी ने जो-जो वायदे किये थे, हज़ारों करोड़ रुपये पानी की तरह प्रचार में बहाकर जिस प्रकार का माहौल तैयार किया था, और जिस किस्म की अपेक्षाएँ पैदा की थीं, वे ताश के पत्तों के समान ढहती हुई नज़र आ रही हैं। मोदी सरकार के बनने के बाद महँगाई में बढ़ोत्तरी हुई है, खुदरा व्यापार और रक्षा में एफ़.डी.आई. को मान्यता देकर भाजपा की सरकार ने दिखला दिया है कि फासीवादियों से ज़्यादा दोगली और कोई राजनीतिक प्रजाति नहीं हो सकती है। 9 सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण को हरी झण्डी दिखा कर और अन्य 13 सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण के प्रस्ताव को पेशकर मोदी सरकार ने दिखला दिया है कि उसकी पूँजीपरस्त नीतियाँ रोज़गार पैदा नहीं करेंगी बल्कि ख़त्म करेंगी; मोदी सरकार द्वारा श्रम क़ानूनों में सुधार भी वास्तव में मजदूरों के बीच बेरोज़गारी को बढ़ायेगा। मिसाल के तौर पर, ओवरटाइम को बढ़ाने से संगठित क्षेत्र में भी रोज़गार सृजन की दर में कमी आयेगी, क्योंकि अभी संगठित क्षेत्र में ही ओवरटाइम के क़ानून का एक हद तक पालन होता है। इसी प्रकार, जिस प्रकार मोदी सरकार ने जापानी, चीनी, अमेरिकी व अन्य विदेशी कम्पनियों के सामने भारतीय मेहनत और कुदरत को लूट के चरागाह के समान पेश किया है, वह अन्ततः भारतीय मजदूर वर्ग के लिए और मुश्किल कार्य और जीवन स्थितियों को जन्म देगा। यह सच है कि भारतीय टटपूँजिया वर्ग आश्चर्यजनक रूप से राजनीतिक चेतना की कमी का शिकार है और उसकी कूपमण्डूकता का मुकाबला दुनिया के कुछ ही देशों के टटपूँजिया वर्ग कर सकते हैं; लेकिन इसके बावजूद मोदी सरकार ने जिस रफ़्तार के साथ पूँजीपतियों की ताल पर ‘डांस’ किया है, उसने उनके सामने भी इस सच्चाई को साफ़ करना शुरू कर दिया है कि मोदी सरकार को पूँजीपतियों ने हज़ारों करोड़ रुपये खर्च करके सत्ता में इसलिए पहुँचाया है, ताकि वह हर प्रकार के दमन-उत्पीड़न के रास्ते को अख़्तियार करके पूँजीपतियों के लूट के रथ का रास्ता साफ़ रखे। इससे देश के आम मेहनतकश अवाम को कुछ भी नहीं हासिल होने वाला है। मजदूर वर्ग तो मोदी सरकार के सत्ता में आने के बाद से ही श्रम क़ानूनों में सुधार और निजीकरण आदि की नीतियों के विरुद्ध विरोध का सिर उठा रहा था। अब निम्न मध्यवर्ग का

फासीवादियों की पुरानी फितरत रही है कि राजनीतिक तौर पर सितारे गर्दिश में जाने पर वे ज़्यादा हताशा में क़दम उठाते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में हारते हुए नात्सी जर्मनी में यहूदियों व कम्युनिस्टों का फासीवादियों ने ज़्यादा बर्बरता से क़त्ले-आम किया था; उसी प्रकार हारते हुए फासीवादी इटली में मुसोलिनी के गुण्डा गिरोहों ने हर प्रकार के राजनीतिक विरोध का ज़्यादा पाशविकता के साथ दमन किया था। इसलिए कोई यह न समझे कि नरेन्द्र मोदी की फासीवादी सरकार गिरती लोकप्रियता के बरक्स देश के मेहनत-मशक़ूत करने वाले लोगों और छात्रों-युवाओं पर अपने हमले में कोई कमी लायेगी।

भी एक अच्छा-खासा हिस्सा मोदी के खिलाफ़ होता जा रहा है।

मोदी सरकार अपने मैनेजमेण्ट गुरुओं वाले तमाम तौर-तरीकों का इस्तेमाल करके इस छीछालेदर की रफ़्तार को कम करने की कोशिश कर रही है। एक तो मोदी की छवि को लगातार बनाये रखने के लिए तमाम न्यूज़ चैनल के राजनीतिक वेश्यावृत्ति करने वाले पत्रकार दिनों-रात मेहनत कर रहे हैं। कभी यह दिखलाने की कोशिश कर रहे हैं कि मोदी ने पहली बार विश्व मंच पर भारत का सिर ऊँचा करने वाले रुतबे को दिखलाया है, कभी यह बता रहे हैं कि मोदी कितने 'स्मार्ट' और कुशल प्रधानमन्त्री हैं, कभी यह जता रहे हैं कि मोदी 18 घण्टे काम करते हैं (इसीलिए देश के मजदूरों को भी 18 घण्टे काम करना चाहिए!!), कभी मोदी को शिवभक्त तो कभी दुर्गा-भक्त तो कभी गंगा-भक्त के तौर पर पेश करके भारत के जनसमुदायों में मौजूद कूपमण्डूकता का लाभ उठाने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही, मोदी तीर्थस्थलों के लिए ट्रेनें चलाकर और छोटे व्यापारियों के लाभ की कुछ नीतियाँ बनाकर अपने उजड़ते समर्थन आधार को बचाने की कोशिश कर रहे हैं। इन दिखावटी प्रतीकात्मक हरकतों और छवि-निर्माण की कवायदों के अलावा भाजपा ने अपनी पुरानी कुत्सित और घृणित चाल भी चली। 'लव जेहाद' और धर्मान्तरण आदि का नकली मसला उठाकर उत्तर प्रदेश और एक हद तक बिहार में वोटों के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का पूरा प्रयास किया गया। मुज़फ़्फ़रनगर समेत पूरे पश्चिमी उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक तनाव को बनाये रखने का भी पूरा प्रयास किया गया। लेकिन इन सबके बावजूद उत्तराखण्ड, बिहार, उत्तर प्रदेश और राजस्थान के उपचुनावों में भाजपा को हार का सामना करना पड़ा। यहाँ तक कि गुजरात में भी तीन सीटों पर कांग्रेस ने भाजपा को हरा दिया। इससे स्पष्ट दिख रहा है कि नरेन्द्र मोदी का प्रतीकवाद और साम्प्रदायिक कार्ड काम नहीं आ रहे हैं।

लेकिन फासीवादियों की पुरानी फितरत रही है कि राजनीतिक तौर पर सितारे गर्दिश में जाने पर वे ज़्यादा हताशा में क़दम उठाते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में हारते हुए नात्सी जर्मनी में यहूदियों व कम्युनिस्टों का फासीवादियों ने ज़्यादा बर्बरता से क़त्ले-आम किया था; उसी प्रकार हारते हुए फासीवादी इटली में मुसोलिनी के गुण्डा गिरोहों ने हर प्रकार के राजनीतिक विरोध का ज़्यादा पाशविकता के साथ दमन किया था। इसलिए कोई यह न समझे कि नरेन्द्र मोदी की फासीवादी सरकार गिरती लोकप्रियता के बरक्स देश के मेहनत-मशक़ूत करने वाले लोगों और छात्रों-युवाओं पर अपने हमले में कोई कमी लायेगी। वास्तव में, मोदी को 5 साल के लिए पूर्ण बहुमत दिलवा कर देश के बड़े पूँजीपति वर्ग ने सत्ता में पहुँचाया ही इसीलिए है कि वह पूँजी के पक्ष में हर प्रकार के क़दम मुक्त रूप से उठा सके और 5 वर्षों के भीतर मुनाफ़े के रास्ते में रोड़ा पैदा करने वाले हर नियम, क़ानून या तन्त्र को बदल डाले। 5 वर्ष के बाद मोदी की सरकार चली भी जाये तो इन 5 वर्षों में वह शिक्षा, रोज़गार से लेकर श्रम क़ानूनों तक के क्षेत्र में ऐसे बुनियादी बदलाव ला देगी, जिसे कोई भावी सरकार, चाहे वामपंथियों वाली संयुक्त मोर्चे की ही सरकार क्यों न हो, रद्द नहीं करेगी। यही काम करने के लिए अम्बानी, अदानी, टाटा, बिड़ला आदि ने नरेन्द्र मोदी को नौकरी पर रखा है।

इसलिए हमें सिर्फ़ इस बात से सन्तुष्टि का अनुभव नहीं करना चाहिए कि जिन फासीवादियों के चेहरे टीवी स्क्रीन पर आज से दो माह पहले तक चमक रहे थे, वे हालिया चुनावों में करारी शिकस्त मिलने और 'मोदी लहर' के चुटकुले में तब्दील होने से मुरझा गये हैं। यह सच है कि टीवी पर सुधांशु त्रिवेदी, शाहनवाज़ हुसैन आदि जैसे फासीवादियों के घी लगे चिकने-चुपड़े चेहरों की उतरी रंगत इस समय देखते ही बनती है। लेकिन यह फासीवादी सरकार उस काम को अगले 5 वर्षों तक करती रहेगी, जिसके लिए देश के पूँजीपतियों ने उसे काम पर रखा है। इसलिए देश भर की क्रान्तिकारी ताकतों को इन फासीवादियों की हर चाल का सड़कों पर उतरकर पुरजोर विरोध करना चाहिए और जनता की निगाह में इसे अधिक से अधिक बेनकाब करना चाहिए। संसदीय वामपंथियों की लड़ाई चुनावों तक थी और उसके बाद वे अपने-अपने बिलों में समा गये हैं। लेकिन क्रान्तिकारी शक्तियों की लड़ाई तो अब शुरू हुई है। इसलिए सभी क्रान्तिकारी शक्तियों को इस फासीवादी सरकार की हर जनविरोधी साज़िश को नाकाम करने के लिए सड़क पर उतरने के वास्ते कमर कस लेनी चाहिए।

‘लव जेहाद’ के शोर के पीछे की सच्चाई

• कात्यायनी

सत्ता तक पहुँचने के लिए हिन्दुत्ववादी लहर की सवारी करना और सत्तासीन होने के बाद साम्प्रदायिक तनाव के बुखार को एक निश्चित तापमान पर बनाये रखना — यह भाजपा की स्थायी रणनीति है। भाजपा की सरकारें जब राज्यों में अपनी आर्थिक नीतियों के चलते अलोकप्रिय हो जाती हैं तो साम्प्रदायिक तनाव के स्थिर तापमान को किसी न किसी उन्मादी प्रचार की लहर फैलाकर बढ़ा दिया जाता है। दूसरी बार केन्द्र में सत्तासीन होने के बाद अब भाजपा इसी नुस्खे को पूरे देश में आजमाने के लिए तैयार है।

पिछले विधानसभा उपचुनावों ने मोदी लहर में उतार के स्पष्ट संकेत दे दिये। इसके बाद महाराष्ट्र, जम्मू-कश्मीर और हरियाणा में विधानसभा उपचुनाव होंगे और दिल्ली में भी मध्यावधि चुनावों की सम्भावना है। भाजपा को पता है कि नव उदारवादी नीतियों पर धुआँधार अमल आने वाले दिनों में आम जनता पर बेरोजगारी, महँगाई, विस्थापन और रहे-सहे मजदूर अधिकारों के अपहरण द्वारा जो कहर बरपा करने वाला है, वह मोदी की आसमान में कलाबाजी दिखाती पतंग को जल्दी ही ज़मीन पर उतार देगा। सौ दिनों के भीतर ही “अच्छे दिनों” की पतंग नीचे आने लगी है। ऐसी स्थिति में भाजपा ने साम्प्रदायिक तनाव के तापमान को सुव्यवस्थित ढंग से बढ़ाने की कोशिशें शुरू कर दी हैं। उत्तर प्रदेश को निशाने पर विशेष तौर पर सिर्फ इसलिए नहीं रखा गया है कि वहाँ 11 विधानसभा सीटों पर उपचुनाव होने थे, बल्कि इसलिए भी रखा गया है कि उत्तर प्रदेश का केन्द्र में सत्तासीन रहने के लिए विशेष महत्त्व है और उत्तर प्रदेश में यदि साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण होगा तो उसका प्रभाव दिल्ली और हरियाणा पर तो पड़ेगा ही, महाराष्ट्र और जम्मू-कश्मीर (विशेषकर जम्मू और लद्दाख) के विधानसभा चुनावों में भी उसका लाभ मिलेगा। इसीलिए पूर्वी उत्तर प्रदेश के 35 जिलों में अपनी कुख्यात ‘हिन्दू युवा वाहिनी’ के ज़रिये अरसे से साम्प्रदायिक उन्माद और दंगों का खूनी खेल खेलते रहने वाले गोरखपुर के भाजपा सांसद योगी आदित्यनाथ को इस बार एकदम छुट्टा छोड़ दिया गया। विधानसभा उपचुनावों के प्रचार अभियान की कमान कलराज मिश्र और पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष लक्ष्मीकान्त वाजपेयी के साथ योगी आदित्यनाथ को सौंपी गयी, लेकिन योगी ही सबसे अधिक सक्रिय और मुखर रहे। योगी ने “लव जेहाद” को मुद्दा बनाकर घूम-घूमकर ज़हर उगला और पूरी भाजपा उनके सुर में सुर मिलाती। उपचुनावों में पटखनी खाने के बाद भाजपा नेता सकपकाये

ज़रूर हैं और आधिकारिक तौर पर तो वे यहाँ तक कह रहे हैं कि ‘लव जेहाद’ उनके एजेण्डे में है ही नहीं। झूठ बोलना तो फासीवादियों की पुरानी फितरत है। दूसरी ओर अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद और संघ परिवार के तमाम सारे दूसरे संगठन ‘लव जेहाद’ का ज़हरीला प्रचार जारी रखे हुए हैं।

भाजपा झूठे आँकड़ों और तथ्यों के सहारे पहले से यह प्रचार करती रही है कि कुछ मुस्लिम संगठनों द्वारा सिखाये-पढ़ाये गये मुस्लिम युवक योजनाबद्ध ढंग से हिन्दू लड़कियों को बहलाते-फुसलाते हैं, उनसे शादी कर लेते हैं और फिर जबरन धर्मान्तरण करवा देते हैं। इसी तथाकथित मुहिम को भाजपाइयों ने ‘लव जेहाद’ का नाम दिया है। आदित्यनाथ ने “गर्जना” की है कि एक हिन्दू बालिका की जगह वे सौ मुस्लिम बालिकाओं का धर्मान्तरण करवायेंगे। वे भाषणों में और मीडिया साक्षात्कारों में बार-बार यह दुहराकर मुस्लिम आबादी को धमका रहे हैं कि “मेरे एक हाथ में यदि माला है तो दूसरे हाथ में भाला है।” साथ ही दंगों का एक नया जनसंख्या-विज्ञान प्रस्तुत करते हुए आदित्यनाथ ने फरमाया है कि मुसलमानों की आबादी जहाँ दस फीसदी से ज़्यादा है, वहाँ दंगे होते हैं और जहाँ 35 फीसदी से ज़्यादा है, वहाँ गैर-मुस्लिम क़तई सुरक्षित नहीं हैं। ज़ाहिर है कि ‘गुजरात 2002’ की जगह विकेंद्रित रूप में जगह-जगह दंगे भड़काकर उत्तर प्रदेश में गुजरात प्रयोग का नया संस्करण रचने की परियोजना पर संघ परिवार काम शुरू कर चुका है। मुज़फ़्फ़रनगर, मुरादाबाद, सहारनपुर और मेरठ के प्रयोग को इसके लिए पूरे उत्तर प्रदेश में फैलाने के लिए गोरखपुर में अपना आतंक राज चलाने वाले, मऊ और आजमगढ़ में दंगों की आग भड़काने के लिए कुख्यात तथा पूर्वचल के 35 जिलों में सक्रिय फासिस्ट संगठन ‘हिन्दू युवा वाहिनी’ के सर्वेसर्वा योगी आदित्यनाथ से उपयुक्त और कोई व्यक्ति नहीं हो सकता था।

‘लव जेहाद’ का हौवा वास्तव में धर्मान्तरण के हौवे का ही अधिक उन्नत, अधिक उन्मादी और अधिक ख़तरनाक संस्करण है। इस शिगूफ़े को उछालने के पीछे की नीयत और इस झूठ को विश्वसनीय बनाने की फासिस्ट तकनीक को समझने से पहले यह जानना ज़रूरी है कि संघ परिवार और भाजपा ने अपने तमाम मिथ्या-प्रचारों और धर्मोन्माद-उत्प्रेरक तरकीबों-हिकमतों के तरकश में से चुनकर सर्वोपरि प्राथमिकता देकर ‘लव जेहाद’ के तीर को ही प्रत्यंचा पर क्यों चढ़ाया है।

सभी जानते हैं कि भाजपा नवउदारवाद के दौर के काफी पहले से (अपने पूर्वजन्म दिया वाले ‘जनसंघ’ के

समय से ही) निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों की पैरोकारी करती रही है। आज नवउदारवाद की वैश्विक लहर में, भारत की सभी बुर्जुआ पार्टियाँ निजीकरण-उदारीकरण की पक्षधर हैं। अन्तर सिर्फ यह है कि भाजपा एक घनघोर अनुदारवादी पार्टी होने के नाते नवउदारवादी नीतियों पर अधिकतम सम्भव गति से अमल करने की पक्षधर है, हर विरोधी आवाज़ को, हर जनान्दोलन को कुचलते हुए तथा सभी श्रम-अधिकारों एवं जनवादी अधिकारों पर पाटा चलाते हुए अमल करने की पक्षधर है। इन आर्थिक नीतियों में प्रत्यक्षतया कोई लोकरंजक आकर्षण नहीं हो सकता, लेकिन मतपत्रों की ठगी के लिए इन नीतियों के सुनहरे सपनों की सुन्दर आकर्षक पैकेजिंग करके ज़रूर पेश किया जा सकता है। सौ स्मार्ट सिटी बनाकर, बुलेट ट्रेन चलाकर, काला धन वापस लाकर, सामरिक शक्ति बढ़ाकर देश को समृद्धि के शिखर पर पहुँचा देने का वायदा करके नरेन्द्र मोदी यह काम कर चुके हैं। समस्या यह है कि सत्तासीन होकर इन नीतियों पर अमल शुरू होते ही सुनहरे सपनों की आकर्षक पैकेजिंग बहुत जल्दी बदरंग होकर चीथड़े में तब्दील हो जानी है (और यह शुरू भी हो चुका है)। आर्थिक तरक्की के मोदी के वायदे जल्दी ही अपना सारा आकर्षण खो देंगे। तब फिर संघ परिवार और भाजपा के पास अगले पाँच वर्षों के दौरान होने वाले कई विधानसभा चुनावों में और पाँच वर्षों बाद होने वाले लोकसभा चुनावों में अपना वोट बैंक बचाने के लिए पुराने हिन्दुत्ववादी विभाजनकारी नारों, नुस्खों और चालों को आजमाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं बचेगा। हालात ऐसे हैं कि सौ दिनों के भीतर ही बैलून पिचकता हुआ नीचे उतरने लगा है, इसलिए चिन्तित-विचलित भाजपाइयों को साम्प्रदायिक तनाव और उन्माद भड़काने की वे तमाम तिकड़में अभी से करनी पड़ रही हैं, जो वे कुछ समय बाद करने की सोचते थे।

हिन्दुत्व के नारे उछालकर साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के चिर-परिचित भाजपाई नुस्खे ये हैं : रामजन्म भूमि का मसला, संविधान से धारा 370 हटाने का मुद्दा, मुस्लिम आतंकवाद का मुद्दा और धर्मान्तरण का मुद्दा। रामजन्मभूमि का मसला अब ऐसी काठ की हाँड़ी हो चुका है, जिसे फिर से आँच पर रखना मुश्किल है। दूसरे, यह मामला अभी सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन है और जब केन्द्र में अपनी ही सरकार हो तो भाजपाई मन्दिर-निर्माण के लिए कानून बनाने की बात करके फ़िलहाल अपनी ही सरकार के लिए संकट नहीं पैदा करना चाहते क्योंकि ऐसा करने के दूरगामी परिणाम न तो उनके हित में होंगे, न ही भारतीय पूँजीपति वर्ग और साम्राज्यवादी इस मामले को अन्तिम परिणति तक पहुँचाने की इजाज़त देने और उसका ख़ामियाजा भुगतने के लिए अभी तैयार है। रही बात धारा 370 की, तो भाजपा बखूबी जानती है कि वह इसे हटा नहीं सकती। यदि वह ऐसा वायदा करती है, तो इससे न तो जम्मू-कश्मीर में उसे लाभ होगा, न ही व्यापक जनता के लिए यह इतना ज्वलन्त प्रश्न है कि आगामी उपचुनावों

में इससे अपने पक्ष में कोई लहर पैदा की जा सके। तीसरा मुद्दा मुस्लिम आतंकवाद का है, जो प्रभावी बनता नहीं दीखता क्योंकि हाल के वर्षों में भारत में यह परिघटना उतार पर रही है (संसद पर हमले या मुम्बई-पुणे जैसी घटनाएँ नहीं घटी हैं)। दूसरे, मुस्लिम आतंकवाद के नाम पर आम लोगों को प्रताड़ित करने की बहुतेरी घटनाएँ प्रमाणित होकर सामने आयी हैं। तीसरे, मुस्लिम आतंकवाद की देशी-विदेशी अभिव्यक्तियों के विरुद्ध आम मुस्लिम आबादी के बीच से विरोध के स्वर मुखर होकर सामने आये हैं। चौथे, साध्वी प्रज्ञा, असीमानन्द और कर्नल पुरोहित आदि के मामलों के उदाहरणों से हिन्दुत्ववादी आतंकवाद की संगठित साजिशों के उजागर होने से भी एकतरफ़ा ढंग से इस मामले को तूल देकर केन्द्रीय मुद्दा बनाना मुश्किल लग रहा था। फिर बच जाता था धर्मान्तरण का मामला। संघ परिवार और उसके अनुषंगी संगठन तृणमूल स्तर पर अपने मुस्लिम-विरोधी और ईसाई-विरोधी प्रचार कार्य के दौरान इस मसले को लगातार ज़िन्दा बनाये रखते हैं। यह बात कई समाज विज्ञानी विस्तृत तथ्यों सहित प्रमाणित कर चुके हैं कि किस तरह आर.एस. एस. के विचारक मुस्लिम आबादी की सापेक्षिक वृद्धि दर के अधिक होने के जालसाजी भरे आँकड़े प्रस्तुत करके 2040 तक भारत के मुस्लिम बहुल देश हो जाने का हौवा खड़ा करते समय मुस्लिमों में बहुविवाह और धर्मान्तरण के बारे में भी सरासर झूठे तथ्य प्रस्तुत करते हैं। हिन्दुत्ववादी प्रचारक प्रायः किसी एक इलाके में धर्मान्तरण की घटनाओं की अफवाह योजनाबद्ध ढंग से फैला देते हैं और फिर साम्प्रदायिक तनाव और दंगे भड़काने में कामयाब हो जाते हैं। योगी आदित्यनाथ भी इस गोयबेलसी हुनर के पुराने माहिर उस्ताद हैं।

‘लव जेहाद’ का हौवा धर्मान्तरण के पुराने हौवे का ही एक उन्नत और ज़्यादा ख़तरनाक संस्करण है। यह धर्मान्तरण के साथ हिन्दू स्त्रियों को “पथभ्रष्ट” बनाकर मुस्लिम सन्तानों की माँ बनाने की “साजिश” को जोड़ देता है। पारम्परिक रूढ़िवादी आम हिन्दू जनमानस को तब यह कहकर भड़काना और आसान हो जाता है कि यह सिर्फ़ धर्म की रक्षा का ही सवाल नहीं है, बल्कि “घर की इज्जत” का मामला है।

उल्लेखनीय है कि मुज़फ़्फ़रनगर में किसी मुस्लिम लड़के द्वारा हिन्दू लड़की को छेड़ने की घटना से विवाद की शुरुआत बाद में विशुद्ध अफवाह सिद्ध हुई, जिसे संगठित ढंग से रातों-रात पूरे इलाके में फैलाकर संघ परिवार दंगा भड़काने में कामयाब हुआ था। झगड़े की शुरुआत वास्तव में दो लोगों की मोटरसाइकिलें टकराने से हुई थी। अभी राँची की तारा शाहदेव और रकीबुल हसन उर्फ़ रंजीत कोहली के मामले को काफी तूल दिया गया। रकीबुल उर्फ़ रंजीत नेताओं-नौकरशाहों से घनिष्ठता रखने वाला एक दलाल धन्धेबाज़ है, यह तय है। हो सकता है तारा शाहदेव से प्रेम विवाह के बाद उनके रिश्तों में दरार और टूटन का यह भी एक कारण हो। तारा शाहदेव ने पहले तो विवाद की गर्मी में जबरिया धर्मान्तरण के दबाव का आरोप लगाया, लेकिन बाद

में वह स्वयं इससे मुकर गयी और उसने उन लोगों की कड़ी आलोचना भी की, जो इसे हिन्दू बनाम मुसलमान का सवाल बना रहे हैं। यह मामला केवल एक विफल प्रेम विवाह और पारिवारिक हिंसा का है और साथ ही, अब रंजीत उर्फ रकीबुल के कथित काले धन्धों का भी है।

‘लव जेहाद’ के तथ्य गढ़ने की “तकनीक” क्या होती है – इसे आसानी से समझा जा सकता है। यदि पूरे देश के आँकड़े जुटाये जायें तो वैवाहिक जीवन में स्त्रियों की प्रताड़ना एवं अलगाव तथा प्रेम में धोखा देने की लाखों घटनाएँ मिलेंगी। इनमें से उन अन्तर-धार्मिक प्रेम विवाहों और प्रेम प्रसंगों को छाँट लिया जाये जिनमें पति/प्रेमी मुस्लिम हों और पत्नी/प्रेमिका हिन्दू। विवाद की गर्मी में पत्नी/प्रेमिका की ओर से स्वयं या किसी प्रेरणा-सुझाव के वशीभूत होकर कोई भी आरोप लगाया जा सकता है, जिसमें धर्मान्तरण का आरोप भी शामिल हो सकता है। हो सकता है कुछ मामलों में धर्मान्तरण के दबाव का आरोप सच भी हो, लेकिन मात्र इस आधार पर यह भयंकर नतीजा कर्त्तई नहीं निकाला जा सकता कि संगठित तरीके से कुछ मुस्लिम संगठन मुस्लिम युवाओं को तैयार करके हिन्दू युवतियों को बहला-फुसलाकर प्रेमजाल में फँसाने की मुहिम चला रहे हैं। यह बता पाना मुश्किल है कि इस प्रकार “बहलाने या फुसलाने” में हिन्दू युवकों की संख्या अधिक है या मुस्लिम युवकों की। इसी प्रकार संघ परिवार के फासिस्ट यह भी दावे के साथ नहीं कह सकते कि अन्तरधार्मिक दम्पतियों में हिन्दू पति-मुस्लिम पति वाले जोड़ों की संख्या अधिक है या मुस्लिम पति-हिन्दू पत्नी वाले जोड़ों की संख्या अधिक है।

यह दिलचस्प है कि संघ परिवार आज तक किन्हीं मुस्लिम संगठनों द्वारा संगठित ढंग से ‘लव जेहाद’ चलाने का एक भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर पाया। बहुत कोशिशों के बाद, अब तक मीडिया के सामने वे कुल आठ-दस ऐसी मुँह पर काला कपड़ा बाँधे लड़कियों को ही पेश कर सके जिन्होंने बताया कि धर्म छुपाकर उन्हें किसी मुस्लिम ने प्रेमजाल में फँसाया या शादी के बाद जबरिया धर्मान्तरण का दबाव बनाया। हालाँकि इन साक्ष्यों की प्रामाणिकता को भी जानने का कोई तरीका नहीं है, लेकिन इन्हें सच भी मान लें तो इनके आधार पर ‘लव जेहाद’ जैसे किसी संगठित अभियान का वजूद में होना कर्त्तई साबित नहीं होता। तथ्य बस यही है कि विभिन्न चैनलों पर उपस्थित संघ परिवार के प्रवक्ताओं और सोशल मीडिया पर लगातार यह बात की जाती रहती है कि कुछ मुस्लिम युवक हाथ में कलावे बाँधकर बाइक लिये हिन्दू बहुल मुहल्लों और सार्वजनिक स्थानों पर हिन्दू लड़कियों को बहलाने-फुसलाने के लिए घूमते रहते हैं। गोयबेल्सों की जारज औलादों को तथ्यों और प्रमाणों से भला क्या लेना-देना! वे अपने पिताजी की इस सीख पर अमल करते हैं कि एक झूठ को यदि सौ बार दुहराया जाये तो वह सच लगने लगेगा।

संघ परिवार के हिन्दुत्ववादी फासिस्टों ने जितना मुसोलिनी से सीखा है, उतना ही हिटलर से भी सीखा है। हिटलर ने

अपनी आत्मकथा ‘माइन कैम्फ’ में आर्य रक्त की शुद्धता के प्रति गहरी चिन्ता बार-बार प्रकट की है। यहूदियों के बारे में उसने लिखा है : “ये गन्दे और कुटिल लोग मासूम ईसाई लड़कियों को बहला-फुसलाकर, उनको अपने प्रेम के जाल में फँसाकर उनका खून गन्दा किया करते हैं।” इतिहासकार विलियम एल.शिरर ने अपनी पुस्तक ‘द राइज़ एण्ड फॉल ऑफ थर्ड राइख’ में हिटलर के यहूदी-विरोध की पूरी मानसिकता की संरचना और फासिस्ट मानस में गहराई तक पैठी रुग्ण यौन-मनोग्रन्थियों की तफ़सील से पड़ताल की है। फासिस्ट राजनीति संकटग्रस्त पूँजीवाद की ज़रूरत है, इसलिए वह उसे अपनाता है। फासिस्ट राजनीति के वाहक रुग्ण पूँजीवादी सामाजिक ज़मीन से पैदा हुए वे रुग्ण मानस लोग होते हैं, जो जनवाद और तर्कणा के घोर विरोधी होने के कारण नस्ली-धार्मिक संकीर्णता और निरंकुश स्त्री-विरोधी मानसिकता से ग्रस्त होते हैं। वे एक विरूपित मिथ्याभासी चेतना के शिकार होते हैं और अपने विचारों का प्रचार करते-करते “विधर्मियों” नास्तिकों और स्त्रियों के प्रति ‘ऑटोसजेस्टिव’ तरीके से स्वयं को ज़्यादा से ज़्यादा नफ़रत से लबरेज़ करते चले जाते हैं। ऐसे फासिस्ट ‘लव जेहाद’ का हौवा खड़ा करके दूसरे धर्मावलम्बी ‘अन्य’ के खिलाफ़ और आज़ाद स्त्री रूपी ‘अन्य’ के खिलाफ़ जब कोई मुहिम चलाते हैं तो उनके राजनीतिक-सामूहिक हित की पूर्ति के साथ ही व्यक्तिगत स्तर पर उन्हें गहन सन्तोष और आत्मिक आनन्द मिलता है।

‘लव जेहाद’ का हौवा एक ऐसा मुद्दा है जो धर्मान्तरण का हौवा खड़ा करके मुस्लिमों को ‘सॉफ़्ट टारगेट’ बनाने के साथ ही स्त्रियों की आज़ादी को भी ‘सॉफ़्ट टारगेट’ बनाने का हिन्दुत्ववादियों को सुनहरा अवसर देता है। इसके नाम पर हिन्दू लड़कियों को अन्तरधार्मिक प्रेम और विवाह करने से भी आतंकित करके रोकना सुगम होगा। सार्वजनिक स्थानों पर प्रेमी जोड़ों के बैठने, वैंलेण्टाइन डे मनाने, आधुनिक कपड़े पहनने आदि को मुद्दा बनाकर हिन्दुत्ववादी गुण्डा वाहिनियाँ स्त्रियों की आज़ादी और अपने बारे में फँसले लेने के अधिकार पर हमले करती रही हैं। फासिस्टों के लिए स्त्रियाँ स्वतन्त्र निर्णय लेने में सक्षम नागरिक नहीं होतीं, वे “घर की इज़्ज़त” होती हैं, जिनकी हिफाज़त की ज़िम्मेदारी मर्दों की होती है। स्त्री यदि स्वयं निर्णय ले, प्रेम करे, अपना जीवन साथी स्वयं चुन ले, “बेशर्मी” वाले कपड़े पहने तो यह धर्म की हानि है, पुरुष प्रतिष्ठा की हानि है। और यदि वह किसी “विधर्मी” से प्रेम और विवाह करे तब तो धर्म की, संस्कृति की, राष्ट्र की और पुरुष प्रतिष्ठान की घोर हानि है – यही मानक फासिस्ट सोच होती है। इसी मानक सोच से प्रेरित फासिस्ट बहुत मन से “विधर्मियों” और आज़ाद स्त्रियों को सबक सिखाने के लिए बड़-चढ़कर ‘लव जेहाद’ का शोर मचा रहे हैं, हालाँकि इस पूरे शोर का मूल प्रेरक तत्व यह है कि आज की परिस्थिति में धार्मिक आधार पर ध्वुीकरण करके अपनी राजनीतिक गोट लाल करने के लिए यही हौवा खड़ा करना हिन्दुत्ववादी फासिस्टों के लिए सबसे मुफ़ीद है। ●

लाल किले से मोदी का लोकरंजकतावादी भाषण और आम जन पर उसका जीरो इफेक्ट यानी थोथा चन्ना बाजे घन्ना

• मीनाक्षी

प्रचारक से प्रधानमंत्री बने नरेन्द्र मोदी द्वारा पन्द्रह अगस्त को लाल किले की प्राचीर से दिये गये लगभग 70 मिनट के भाषण को यदि एक पंक्ति में समेटना हो तो एदुआर्दो गालियानो की यह प्रसिद्ध उक्ति 'राजनीतिक सिर्फ बोलते हैं पर वास्तव में कहते कुछ भी नहीं' सिर्फ सामान्यसूचक (राजनीतिक) संज्ञा की जगह नामसूचक (मोदी) संज्ञा की विशिष्टता के साथ बस दोहरा देनी होगी। मोदी की राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघी आत्मा संघ प्रचारक की है। वहाँ उपदेश धर्मवाद या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रचार का सदा एक आवश्यक अवयव रहा है। यह अनायास नहीं है कि राष्ट्रीय परिदृश्य पर मोदी के प्रायोजित उभार के प्रारम्भिक दौर से ही उनके चुनावपूर्व सार्वजनिक भाषण उपदेशात्मक मुखरता और प्रचारात्मक शैली के घोल से सिक्त था(तब उनमें कार्यक्रमपरक रिक्तता लोगों को बहुत खटकती नहीं थी परन्तु देश के प्रधानमंत्री की हैसियत से पन्द्रह अगस्त का ठोस योजना और अमली कार्यक्रम से रिक्त वही पुराना परउपदेश कुशल बहुतेरे शैली का भाषण इस बार मन्तव्य-उधाड़ था। शब्दजाल का गुब्बारा फट चुका था और यह बिल्कुल साफ हो गया था कि पूँजी हितैषी और जनविरोधी नीतियों को और तेजी तथा और कुशलता के साथ आगे बढ़ानेवाला पूँजीपति वर्ग का यह चतुर नुमाइन्दा कितनी अधीरता से अपनी भूमिका निभाने के लिए प्रस्तुत था। किसी भी सूरत से वैश्विक पूँजी को आमंत्रित करने की मोदी की उत्कण्ठा उनके भाषण की कायल करनेवाली शब्दावली के प्रयोग में देखा जा सकता है : 'हमारे पास हर क्षेत्र में प्रतिभा, निपुणता और अनुशासन है-इलेक्ट्रॉनिक से लेकर इलेक्ट्रिकल्स तक, केमिकल्स से लेकर फार्मास्युटिकल तक, पेपर से लेकर प्लास्टिक तक और ऑटोमोबाइल से लेकर एग्रीकल्चर तक आदि आदि . . .आप भारत आइये और यहीं बनाइये' – (कम एण्ड मेक इन इण्डिया)। मेक या बनाने का सम्बन्ध केवल मैनुफैक्चर या विनिर्माण से ही नहीं था, इसका मुख्य सम्बन्ध तो मुनाफे से था। यह पहलू भाषण में अबोला भले ही रह गया हो पूँजी निवेशकों के लिए इसका आशय बिल्कुल स्पष्ट था। उनकी अगवानी में पूरे भारत को ही विशेष आर्थिक क्षेत्र में तब्दील करने की मोदी के उतावलेपन से वे वाकिफ़ थे।

मोदी ने अपने भाषण में यह स्पष्ट कर दिया कि उन्हें कच्चे माल का दोहन करने, सस्ते श्रम को निचोड़ने और तैयार उत्पाद को दुनिया के किसी भी देश के बाज़ार में बेचने की पूरी

आज़ादी होगी। स्पष्ट था उन्हें अधिकतम मुनाफा कमाने की पूरी छूट दी जा रही थी। यह आकस्मिक नहीं था। मोदी पूँजीपरस्त नीतियों के तेज़ अमल की भरोसेमन्दी हासिल करके ही पूँजीपति वर्ग के चहेते बने थे। चुनावी घोषणापत्र में ही मोदी ने अपना यह इरादा जाहिर कर दिया था, उसमें स्पष्टतः इस बात का उल्लेख किया गया था कि पूँजीनिवेशकों के मार्ग में आड़े आने वाली हर किस्म की लालफीताशाही को समाप्त कर सरकारी अनुमति हासिल करने सम्बन्धी प्रक्रिया को सरल बनाया जायेगा। इसके साथ ही उनकी सहूलियत के लिए अवसरचनागत ढाँचे का निर्माण, निर्विघ्न विद्युत आपूर्ति, श्रम क़ानून को लचीला (वास्तव में इसका अर्थ लचर था) बनाने के उद्देश्य से श्रम क़ानून में सुधार का प्रस्ताव, और सुविधाजनक पर्यावरण देने के लिहाज से हर मुमकिन क़दम उठाना शामिल था। मोदी ने अपने भाषण में जिस जीरो डिफ़ेक्ट (नकारात्मक प्रभाव से रहित) और जीरो इफ़ेक्ट (नकारात्मक पर्यावरण से रहित) का नारा दिया उनकी जुगलबन्दी चाहे कितना भी कर्णप्रिय और प्रतीति चाहे जितनी भी सुहावनी हो उसका सीधा सा अर्थ है, पूँजी निवेश के पक्ष में पर्यावरण का निर्माण। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि कारख़ाना अधिनियम, औद्योगिक विवाद क़ानून, और ट्रेड यूनियन क़ानून आदि में निहित प्रावधानों के रूप में श्रमिकों के जिन अधिकारों ने सुरक्षा पाकर वैधानिक शक्ति अख़्तियार की थी उसे श्रम सुधार के ज़रिये अपहृत किये बिना और पूँजीपतियों को पहले एक हद तक और फिर क्रमशः और अधिक वैधानिक प्रावधानों के बंधन से मुक्त किये बिना उन्हें सुविधाजनक पर्यावरण नहीं दिया जा सकता।

दूसरे, विखण्डित एसेम्बली लाइन की उत्पादन प्रक्रिया को और मुकम्मिल बनाना आज नवउदारवाद की ज़रूरत है। दस या उससे भी कम मज़दूरों वाले छोटे-छोटे कारख़ानों में जहाँ पृथक और स्वतन्त्र माल उत्पादन तो होता है लेकिन अन्तिम उत्पाद तैयार करने की पूरी उत्पादन प्रक्रिया का वह हिस्सा भी होता है, लिहाज़ा लचीले श्रम क़ानून के ज़रिये छोटे कारख़ानेदारों को भी क़ानूनी ज़िम्मेदारी से मुक्ति दिये बिना पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए श्रम क़ानून में निम्नलिखित संशोधन प्रस्तावित करके अब मोदी सरकार की योजना श्रम क़ानून के दायरे में आने वाले उन सभी छोटे कारख़ानेदारों को भी क़ानूनी राहत देने की है जहाँ 20 (विद्युत संचालित) और 40 (बिना विद्युत संचालित) से कम

संख्या में मजदूर काम करते हैं। पहले यह सुविधा क्रमशः 10 और 20 की संख्या से कम मजदूरों वाले कारखानों को मिली थी। इसी प्रकार ठेका मजदूरी क़ानून को अब 50 या इससे अधिक मजदूरों वाले कारखाने में लागू करने का प्रस्ताव है, इसके पहले यह संख्या 20 या इससे अधिक की थी। इसके अलावा 300 से कम मजदूरों वाले कारखाने को बन्द करने के लिए अब कारखाना मालिक किन्हीं क़ानूनी प्रावधानों के पालन की बाध्यता से मुक्त होंगे। यही नहीं, यूनियन के पंजीकरण के लिए आवश्यक 10 प्रतिशत को बढ़ाकर अब 30 प्रतिशत कर देने का प्रावधान किया गया है। इसी प्रस्ताव के तहत अब मजदूरों की ओवरटाइम की सीमा को एक महीने में 50 घण्टे से बढ़ाकर 100 घण्टा कर दिया गया है। परन्तु सिंगल रेट पर ओवरटाइम करने की मजदूरों की विवशता पर सरकार की अहस्तक्षेपकारी नीति चलन में है। और अब पूँजीपतियों द्वारा श्रम क़ानून के पालन पर निगरानी रखने के लिए अधिकृत कारखाना इंस्पेक्टर का पद समाप्त करने का प्रस्वाव रखकर सरकार ने इस अहस्तक्षेपकारी नीति की सार्वजनिक घोषणा कर दी है।

निवेशकों के निवेश के लिए सुविधाजनक पर्यावरण की व्यवस्था श्रम क़ानून को ढीला-पोला बना कर ही नहीं किसानों से उनकी ज़मीन अधिकृत करके भी की जायेगी। ज़मीन के सुगमता पूर्वक अधिग्रहण के लिए ज़मीन अधिग्रहण क़ानून में भी संशोधन प्रस्तावित है। जाहिर है इसकी मार निम्न मध्यम और छोटे किसानों पर ही होगी। मोदी की ग़रीब जनता की श्रेणी में मेहनतकशों की यह आम आबादी निश्चय ही नहीं आती जिसके प्रति अपने चिन्ता और सरोकार का उनका आडम्बरपूर्ण प्रदर्शन निरन्तर जारी रहता है। इसीलिए मोदी जी के भाषण में पूँजी को आमन्त्रण की चर्चा तो है परन्तु उसकी सेवा के लिए श्रम सुधार के ज़रिये क़ानूनी सुरक्षा से वंचित हो जाने वाली मेहनतकश जमात की चिन्ता नदारद है। साफ़ है, मोदी के भाषण में जिस आम जनता का जिक्र होता है दरअसल वह खाता पीता वह मध्यवर्ग है जो पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के सामाजिक अवलम्ब के रूप में निरन्तर सक्रिय है। और उसकी क्रयशक्ति बाज़ार के साथ होड़ में लगातार मुब्तला है। अति उत्पादन के संकट का एक हद तक ही सही यही तो तारनहार है। पूँजीपति वर्ग के प्रबन्धन समिति को इसीलिए यह खुशहाल वर्ग बहुत प्रिय है जो महँगाई आदि से निपटने के व्यक्तिगत रास्ते बिना किसी हो हल्ला के खामोशी से अपने स्तर पर (भ्रष्ट तरीके से) निकाल लेता है।

पन्द्रह अगस्त के अपने भाषण में देश को प्रगति पथ पर ले जाने की बात करते हुए भी मोदी ने कोई ठोस योजना नहीं रखी और न ही उसके किसी क्रियात्मक पहलू पर बात की। हमेशा की तरह लोगों के लिए उनके पास नसीहतों का पिटारा था। इस पिटारे का एक हिस्सा छात्रों युवाओं के हिस्से भी आया। उन्हें यह सलाह दी गयी कि 'मैं परवाह क्यों करूँ' की सोच से बाहर आकर उन्हें अपनी भूमिका का निर्वाह करना चाहिए, उनके हुनर के विकास से ही हिन्दुस्तान हुनरमन्द होगा। (स्किल डेवलपमेण्ट एण्ड स्किल इण्डिया)। इस लच्छेदार

भाषा के सम्मोहन से अछूती युवा आबादी के सामने यह यक्ष प्रश्न तो था ही कि आखिरकार निपुणता हासिल कैसे हो। नवउदारवादी नीतियों के प्रभाव से पूरी शिक्षा व्यवस्था ही बाज़ार के हवाले है। यानी जितनी बड़ी औकात उतनी ऊँची शिक्षा। आज स्थिति यह है कि पढ़ने योग्य छात्रों में 4 प्रतिशत तो कभी स्कूल नहीं जाते, 58 प्रतिशत प्राथमिक स्कूल की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाते, 90 प्रतिशत हाईस्कूल की शिक्षा पूरी नहीं कर पाते, केवल 10 प्रतिशत ही कालेज तक पहुँच पाते हैं। वहाँ भी 80 प्रतिशत स्नातक की उपाधि तो प्राप्त करते हैं लेकिन उनके पास कोई विशेषज्ञता नहीं होती। 12 प्रतिशत छात्रों को स्नातकोत्तर की उपाधि मिल पाती है, 1 प्रतिशत को शोध कार्य, और 1 प्रतिशत को डिप्लोमा कोर्स की। कालेज पहुँचे दस फीसदी छात्रों में से 19 प्रतिशत विज्ञान के क्षेत्र में, और 18 प्रतिशत कामर्स और मैनेजमेण्ट की उपाधि ले पाते हैं। इंजीनियरिंग व तकनीकी क्षेत्र में 16 प्रतिशत छात्रों को, और महज़ 4 प्रतिशत को चिकित्सा विज्ञान में उपाधि मिलती है। आँकड़ों से स्पष्ट है कि छात्रों की एक नगण्य सी आबादी को ही उच्च शिक्षा तक पहुँचने का अवसर मिल पाता है। दूसरी तरफ़, उच्च मानक के प्रतिष्ठित समझे जानेवाले 30 प्रतिशत कालेज व विश्वविद्यालय के करीब 55 प्रतिशत छात्र ही इस योग्य बन पाते हैं कि रोज़गार हासिल कर सकें। यहाँ यह ग़ौरतलब है कि यह मानक घरेलू है, वैश्विक मानकों के हिसाब से यह प्रतिशत और कम हो जाता है। यह बड़े शहरों की स्थिति है, छोटे-छोटे शहरों में विश्वविद्यालयी शिक्षा पानेवालों का प्रतिशत अपेक्षाकृत और भी कम है। देश को डिजिटल बनाने की वकालत करनेवाले प्रधानमन्त्री महोदय को शायद यह जानकर हैरानी हो कि छोटे छोटे शहरों और कस्बों के 50 प्रतिशत से ज़्यादा युवा कम्प्यूटर की जानकारी हासिल करने के संसाधनों से वंचित हैं। देश की ज़मीनी हकीकत से इस कदर कटा हुआ कोई प्रधानमन्त्री इसी तरह की खोखली बातें कर सकता है। मोदी को यह मालूम होना चाहिए कि विशेषज्ञता और हुनर हासिल करने का सवाल मन की मर्जी से नहीं जुड़ा हुआ है। यह वस्तुगत आर्थिक परिस्थितियों का दबाव है जिसके तले पिसकर निपुणता अर्जित करने की बात तो दूर रही कोई छात्र सामान्य पढ़ाई भी पूरी नहीं कर पाता। मोदी जी से यह पूछा जाना चाहिए कि जिस देश में छात्र आबादी का मात्र 10 प्रतिशत ही स्नातक तक पहुँच पाता हो और जहाँ उच्च शिक्षा तक पहुँच की दर लगातार घटती जाती हो वहाँ छात्रों युवाओं को देश की तरक्की की खातिर अपनी काबिलियत और कौशल विकास के लिए ललकारना उनके साथ किया गया क्या एक अश्लील मज़ाक नहीं है।

देश के 47 प्रतिशत ग्रेजुएट युवा के लिए रोज़गार सृजन की ठोस व्यावहारिक योजना की जगह भाषण में डिजिटल इण्डिया, दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और टेलीमैडिसिन के माध्यम से गाँव के आखिरी छोर तक शिक्षा पहुँचा देने, तथा ग़रीबों के लिए सही चिकित्सीय इलाज के चुनाव की दिशा निर्धारित करने में मार्गदर्शन करने और ऐसी ही अन्य आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध कराने के थोथे वादे भी किये गये। जहाँ सरकारी स्कूलों

की गुणवत्ता का यह आलम हो कि पाँचवीं दर्जा के छात्र दूसरी-तीसरी कक्षा के गणित या विज्ञान के प्रश्नों को हल न कर पाते हों, जिन्हें ढंग से हिन्दी भाषा भी पढ़नी लिखनी न आती हो वहाँ प्रधानमन्त्री जी की प्राथमिकता बुनियादी शिक्षा का ढाँचा मजबूत बनाने की होनी चाहिए। इसके बगैर डिजिटल और टेलीमेडिसिन, दूरस्थ शिक्षा आदि आदि की बात करना हास्यास्पद ही है। प्रधानमन्त्री का वह भाषण वास्तव में मशक्कत के साथ चुने और तराशे गये गड़गड़ाते शब्दों की बरसात भर थी जो आम आदमी की उम्मीदों और ज़रूरतों को सूखा ही छोड़ गयी थी। मुहावरे में कहें तो वह 'थोथा चना बाजे घना' की विशेषता रखता था।

सार्वजनिक मंचों से दिये गये प्रधानमन्त्री के पहले के भाषणों में भी फ़िकरेबाज़ी के अलावा बहुत कुछ नहीं होता था। कभी देश की प्रगति के लिए पाँच टी (टेलेंट, ट्रेडिशन, ट्रेड, टूरिज्म, टेक्नॉलाजी) की तान छेड़ दी जाती, कभी छप्पन इंची सीने की दम्भपूर्ण उक्ति होती, स्मार्ट सिटी जैसे सारहीन चौकाऊ शब्द भी होते, कभी जीरो डिफ़ेक्ट व जीरो इफ़ेक्ट की तुकबन्दी होती तो कभी ई गवर्नेन्स से ईजी गवर्नेन्स की ओर बढ़ने की नारेबाज़ी होती और कभी 'न खाऊँगा न खाने दूँगा' जैसे धमाकेदार फिल्मी जुमले भी होते। फिर भी मोदी को इस बात का श्रेय तो देना ही पड़ेगा कि उन्होंने भूमण्डलीय नीतियों और उसकी कार्यप्रणाली के अनुरूप 'मिनिमम गवर्नमेंट मैक्सिमम गवर्नेन्स' का एक ठोस वजनी नारा भी दिया था। यह तो मानना पड़ेगा कि नवउदारवादी व्यवस्था द्वारा उनकी सरकार से जिस अहस्तक्षेपकारी भूमिका (मिनिमम गवर्नमेंट) और पूँजीपक्षीय प्रबन्ध कौशल की (मैक्सिमम गवर्नेन्स) माँग की गयी थी उसमें खरा उतरने की उनकी तैयारी ज़बर्दस्त थी। यह भूलना नहीं चाहिए कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में प्रचारकों को लोकप्रियतावादी चमकृत करनेवाली शब्दावलियों के इस्तेमाल के लिए शुरू से ही शिक्षित-प्रशिक्षित करने की परम्परा रही है। प्रचारकों का प्रशिक्षण कोर्स चार 'पी' पर आकर समाप्त होता है। पिक-अप यानी छाँटो, पिन-अप अर्थात् तैयार करो, पुश-अप यानी आगे बढ़ाओ और पुल-अप अर्थात् ओहदे तक पहुँचाओ। यह प्रबन्धकीय गुरुडम और कैरियरवाद की भाषा है जो आडम्बरपूर्ण शैली में अभिव्यक्ति पाती है। साफ है, आर एस एस से चार 'पी' में प्रशिक्षित होकर आये मोदी की भाषा भाव भंगिमा और पूरी की पूरी चिन्तन प्रणाली जब इसी सांचे-खांचे में ढली होगी तो उनके भाषण की प्रस्तुति इससे अलग हो भी कैसे सकती है।

जनहित और समाज कल्याण वास्तव में मोदी की समस्त कार्यवाइयों का प्रतीतिगत यथार्थ ही है, उसका सारभूत यथार्थ है पूँजीपति वर्ग के व्यापक हितों की पूर्ति। मोदी इस बात से बखूबी परिचित हैं कि पूँजीपतियों की नज़रों में चढ़ने व सत्ता में बने रहने की बस यही एक तरकीब है, करनी में पूँजीपति वर्ग का व्यापक हित हो और कथनी में जनकल्याणकारी वादों की पोटली। मोदी के भाषण की अति चर्चित और बहुप्रशंसित 'सांसद आदर्श ग्राम योजना' और 'प्रधानमन्त्री जन धन योजना' को इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए। ये योजनाएँ दरअसल

मुनादी वाले ढोल हैं। यूँ तो सांसद आदर्श ग्राम योजना का उद्देश्य जनता और तथाकथित जनकल्याणकारी नीतियों के प्रति सांसदों की जवाबदेही सुनिश्चित करना है। परन्तु पड़ताल करने पर असलियत सामने आ जाती है। यदि प्रत्येक सांसद प्रधानमन्त्री की मंशा के अनुरूप 2016 तक एक गाँव और 2019 तक दो गाँवों को आदर्श गाँव बनाने में जी जान से जुट भी जाये तो कुलमिलाकर 543 सांसदों द्वारा अधिकतम 1086 गाँव ही आदर्श गाँव की परिधि में खींच-खाँचकर शामिल हो पायेंगे। यहाँ सवाल यह है कि देश के बाकी बचे रह गये 637510 गाँवों के बारे में प्रधानमन्त्री जी ने अपने भाषण में तो कोई जिक्र नहीं किया, क्या उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया जायेगा, या उसके बारे में भी कोई योजना ली जायेगी। यह भी बहुत स्पष्ट नहीं हो सका कि सांसद सम्भावित गाँव में डेरा डाल कर उसे आदर्श बनायेंगे या आ जाकर सम्बन्धित ग्रामीण प्रशासन के ज़रिये इस काम को अंजाम देंगे। दूसरे, यह सवाल भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि इस आदर्श गाँव का स्वरूप क्या होगा। क्या इसमें सबके लिए बिजली, पीने का साफ पानी, इलाज के लिए उपयुक्त उपकरण-दवाएँ व कुशल चिकित्सीय स्टाफ वाले चिकित्सालय और उपयुक्त इमारत, शिक्षण सामग्री व प्रशिक्षित योग्य शिक्षकों वाले विद्यालय होंगे? क्या गाँव के पूरे कृषि क्षेत्र के लिए बीज, खाद, सिंचाई योग्य जलापूर्ति और ट्रैक्टर व हार्वैस्टर की उपलब्धता सुगम रहेगी? जाहिर है डिजिटल इण्डिया में कृषि कार्य पद्धति के आधुनिक हुए बिना कोई गाँव आदर्श स्वरूप तो ग्रहण कर नहीं सकता। क्या इसके आधुनिकीकरण की भी कोई योजना है? ऐसा दिखता तो नहीं। हकीकत यही है कि जिस आदर्श गाँव की मोदी बात कर रहे हैं निजीकरण और उदारीकरण के दौर में आज उतना भी सम्भव नहीं है। जहाँ देश भर में पीने योग्य साफ पानी तक उपलब्ध न हो, बोतलबन्द और आर ओ का पानी केवल मुट्ठीभर हैसियतदारों के लिए हो और बाकियों के लिए कुएँ, बावड़ी, ताल, हैंडपम्प और क्लारीन मिलासप्लाई का पानी, वहाँ जाहिर है गाँवों तो क्या शहरी बस्तियों में भी साफ पानी की ज़रूरत पूरी नहीं की जा सकती। अगर यह मान लिया जाये कि आदर्श ग्राम में चिकित्सा और शिक्षा प्रणाली को भी आदर्श रूप दिया जायेगा तब प्रश्न यह उठता है कि प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक में शिक्षकों और हर स्तर के सरकारी अस्पतालों में चिकित्सकों के पद जबकि हर जगह रिक्त पड़े रहते हों वहाँ चुने गये सम्भावित आदर्श गाँव के लिए क्या अलग से रिक्त पद भरे जायेंगे। परन्तु ऐसा होना सम्भव ही नहीं है। वास्तव में यहाँ प्रश्न आर्थिक नीतियों का है। उसमें किसी बुनियादी परिवर्तन के बिना ये सारी बातें और योजनाएँ धरी रह जायेंगी, पिछले 68 वर्षों का इतिहास इसकी पुष्टि करता है।

प्रधानमन्त्री जन धन योजना के साथ यही बात लागू होती है। चार राज्यों में विधानसभा के उपचुनाव के हालिया नतीजों में मोदी के आभामण्डल के क्षीण होने का संकेत पाकर और महाराष्ट्र व हरियाणा में आसन्न चुनाव को देखते हुए उनकी सरकार ने इसकी शुरुआत में तेज़ी तो दिखायी है लेकिन दोनों राज्यों के विधान सभा चुनाव सम्पन्न होने के बाद इसमें

सुस्ती आना लाजिमी है। हर नागरिक के लिए बैंक खाता और हर गरीब परिवार के लिए एक लाख का बीमा जन कल्याणकारी होने का चाहे जितना भ्रम पैदा करे वास्तव में नवउदारवादी नीतियों को बड़ी कुशलता से लागू करने का यह उपक्रम है साथ ही हर स्तर पर ग्रामीण पूँजी के संचलन के माध्यम से यह आर्थिक संकट से उबरने की कोशिश भी है जिसका व्यापक लाभ अन्ततः पूँजीपति वर्ग को ही मिलना है। दूसरे, जहाँ देश की 77 प्रतिशत से भी अधिक की आबादी के सामने महज 20 या उससे भी कम रुपये पर जीवन यापन की विवशता हो, लगभग 40 करोड़ युवाओं पर बेरोजगारी की मार हो और तमाम प्रयासों के बाद महँगाई नियन्त्रणमुक्त हो चुकी हो वहाँ यदि बैंक खाता खुल भी जाये तो नियमित रोजगार और आय के बिना (इसीलिए तो वह गरीब है) उसका खाता निष्क्रिय ही पड़ा रहेगा। ठीक वैसे ही जैसे स्कूल के दिनों में मोदी जी को देना बैंक द्वारा दिया गया गुल्लक। अब यह पता नहीं कि वे उन दिनों आर्थिक छुआछूत के शिकार थे या नहीं।

मोदी ने अपने भाषण में स्त्री के खिलाफ बढ़ते यौन अपराधों और उसके रोकथाम के उपाय का भी जिक्र किया। मंच से ही माँ-बाप के सामने प्रवचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किये गये और इससे निपटने की तरकीब बतायी गयी जो सरल भी था और व्यावहारिक भी। उन्हें बस इतना ही करना था कि वे बेटियों की तरह अपने बेटों को प्रश्नों के दायरे में रखें, बाहर निकलने पर उनसे भी सवाल पृष्ठें। कैसा बढिया समाधान! न कोई झंझट, न अतिरिक्त प्रयास। अब तक के तमाम समाजशास्त्री और चिन्तक व्यर्थ ही पितृसत्तात्मक मानसिकता, भूमण्डलीय संस्कृति और पूँजीवादजनित विमानवीकृत परिस्थितियों का प्रभाव, सामाजिक अलगाव और पृथक्करण और ऐसी ही कितनी जटिल बातों से मामले को उलझाये हुए थे। वैसे, भाषण से यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि अलग-अलग समयों पर स्त्रियों की घरेलू हिंसा, कार्यस्थल पर छेड़खानी या यौन उत्पीड़न से सुरक्षा सम्बन्धी कानूनों का फिर आचित्य क्या था और क्या मोदी के सुझाव के अमल के बाद इनकी ज़रूरत आगे भी रहेगी? भाषण में मोदी ने यह भी नहीं बताया कि उनके ही कैबिनेट में मौजूद बलात्कारी और यौन-उत्पीड़न के आरोपी मन्त्रियों को बर्खास्त क्यों नहीं किया गया? शायद मोदी इन व्याभिचारियों को भी अपने प्रवचनों से सुधारने वाले हैं!

देश का विकास मोदी का प्रिय नारा है जो उनके सभी भाषणों में छाया रहता है और यह मौजूदा भाषण में था। उन्होंने साम्प्रदायिकता को दस वर्षों के लिए रोककर देश का विकास करने का इरादा जाहिर किया। विकास पुरुष की छवि को कायम रखने के लिए भी यह ज़रूरी था। परन्तु इस मामले में वे बिचारे दो पाटों, पूँजीवाद और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के बीच फंस गये लगते हैं। दोनों का ही लक्ष्य साम्प्रदायिक एजेण्डे के बिना पूरा नहीं हो पायेगा। लिहाज़ा लाल किले से 10 वर्षों की सीमा तय करने के बाद भी इन दिनों उत्तर प्रदेश प्रयोग स्थली बना हुआ है, और मुज़फ़्फ़रनगर, सहारनपुर, मुरादाबाद, बरेली, मेरठ और अब अयोध्या व फैज़ाबाद में चिंगारी सुलग रही है। लेकिन मोदी मौन है, इनकी मुखरता अवाक हो गयी लगती है।

अब स्वच्छता और साफ-सफाई के बारे में कुछ बातें। पन्द्रह अगस्त को प्रधानमन्त्री जी ने भाषण मंच से जैसे ही स्वच्छ भारत और शौचालय निर्माण की बात की और प्रत्येक व्यक्ति को उसके साफ सफाई के कर्तव्य की याद दिलायी वैसे ही मोदी को हटाकर विद्या बालन की छवि आँखों के सामने आ खड़ी हुई। दोनों के बीच की प्रचारात्मक साम्यता और विज्ञापनी छवि इतनी एक-सी और सटीक थी कि उनके अन्दाज में भेद कर पाना मुश्किल था। एक हल्का सा अन्तर बस तब दिखायी पड़ा जब मोदी ने इसी प्रसंग में एम पी लैंड स्कीम के तहत सांसदों को शौचालय बनाने का उपदेश दे डाला। अब विद्या बालन यह तो कर नहीं सकती थीं। वे मात्र अभिनेत्री ठहरीं, राजनीतिक तो थीं नहीं, लिहाज़ा संसदीय गरिमा का सवाल उठ सकता था। बहरहाल अब सांसदों-मंत्रियों को शौचालय उद्घाटन करने की अपनी भूमिका से आगे बढ़ कर शौचालय निर्माण के काम को हाथ में लेने का समय आ गया था। स्वच्छता को लेकर देश के प्रधानमन्त्री की संवेदनशीलता देखते ही बनती थी। परन्तु उन्हें इस बात की जानकारी तो होगी ही कि गन्दगी सिर्फ घरेलू कूड़े से नहीं होती, सबसे अधिक कचरा और प्रदूषण तो उद्योग और उद्योगानुमा अस्पतालों से होता है। जहाँ मुनाफ़ा बचाने की खातिर कूड़े के निस्सारण के लिए कोई मद ही नहीं रखा जाता। यूँ तो यह कोई छुपा तथ्य भी नहीं कि कई औद्योगिक पट्टियाँ और उनसे लगे इलाक़े जहरीले कचरे के कारण रिहाइश योग्य नहीं रह गये हैं। जल, जमीन हवा और पूरा वातावरण ही ख़तरनाक हदों तक प्रदूषित हो गया है। और उसके चपेट में आये लोग जानलेवा बीमारियों के शिकार हो जाते रहे हैं। 2009 की पर्यावरण प्रदूषण निर्देशिका (सी ई पी आई) के अनुसार 88 औद्योगिक क्षेत्रों में जब मापा गया तो उसमें 43 गम्भीर रूप से प्रदूषित थे और 43 अत्यन्त गम्भीर रूप से। औद्योगिक कचरा पर रोक लगाये बिना स्वच्छता की बात नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त, व्यक्ति निजी स्तर पर घरेलू कूड़े का निस्सारण नहीं कर सकता। मोदी ने यदि अपशिष्ट पदार्थ से जुड़ी योजना आयोग की 2012-13 की रिपोर्ट ही पढ़ी होती तो उन्हें यह जानकारी होती कि सरकारी स्तर पर भी सम्पूर्ण कचरे का निस्तारण नहीं हो पाता। (खैर, उन्होंने योजना आयोग ही भंग कर दिया, न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी!) इस रिपोर्ट के मुताबिक देश के स्थानीय प्रशासनिक निकाय वाले इलाक़ों से 133760 मीट्रिक टन कचरा प्रति दिन निकलता है जिसमें से सिर्फ 91152 टन उठाया जाता है और निस्तारण केवल 25884 टन का ही रोज़ हो पाता है। यह राजनीति की ही तरह सरकारी मशीनरी की अराजकता और लापरवाह कार्यशैली का प्रमाण है, जिसके वे मुखिया हैं। जाहिर है इसे प्रचारकीय प्रवचन से दूर नहीं किया जा सकता।

और अन्त में, प्रधानमन्त्री ने इसी भाषण में खुद को प्रधान मन्त्री नहीं प्रधान सेवक बताया। बिल्कुल सच, लेकिन किसका? जनता का या पूँजी और हिन्दुत्व का!

●

गाज़ा में इज़रायल की हार और आगे की सम्भावनाएँ

• कात्यायनी

26 अगस्त को हुए हमला-इज़रायल समझौते के बाद गाज़ा में नरसंहार और विनाश का ताण्डव फ़िलहाल रुक गया है। गाज़ा के कर्मठ और जुझारू निवासी अपने तबाह कर दिये गये शहरों-कस्बों के पुनर्निर्माण में जी-जान से जुट गये हैं। ज़मींदोज़ कर दी गयी इमारतों का मलबा तेज़ी से हटाया जा रहा है। बच्चे स्कूलों में जाने लगे हैं। बाज़ारों में भीड़-भाड़ नज़र आने लगी है।

समझौते के तहत इज़रायल मछली पकड़ने पर लगे प्रतिबन्ध को भी हटाने पर तैयार हो गया है। छह समुद्री मील तक गाज़ा निवासियों को समुद्र में मछली मारने की छूट दी गयी है। गाज़ा के एरेज़ तथा करेम शालोम क्रासिंग्स की नाकेबन्दी में भी ढील दी गयी है, जिससे मानवीय सहायता, चिकित्सा-सामग्री और निर्माण-सामग्री गाज़ा में पहुँचने लगी है।

पचास दिनों तक चले इस संघर्ष में गाज़ा के 2145 लोग मारे गये जिनमें 578 बच्चे थे और शेष अधिकांश आम नागरिक थे। मारे जाने वाले हमला के लड़ाकों की संख्या अनुमानतः 12 से 24 के बीच रही होगी। दूसरी ओर हमला के हमलों में कुल 72 इज़रायली मारे गये जिनमें से 64 सैनिक थे और मात्र आठ नागरिक थे। ये आँकड़े इस बात के गवाह हैं कि इज़रायल युद्ध के नाम पर बदहवासी में बर्बर जनसंहार कर रहा था, जबकि हमला प्रतिरोध के दौरान आम नागरिकों के बजाय हमलावर सेना को निशाना बना रहा था।

गाज़ा युद्धविराम वास्तव में एक समझौता नहीं, बल्कि इज़रायल की अबतक की सबसे शर्मनाक हार है जो सच्चाई आने वाले दिनों में और अधिक साफ हो जायेगी। अपने बर्बर आक्रमण के मध्यकाल तक पहुँचते-पहुँचते ज़ायनवादी फासिस्टों को यह अहसास हो गया था कि गाज़ा की लड़ाई जीत पाना असम्भव है और दलदल में फँसे हाथी की तरह वे गाज़ा में फँस गये हैं। जघन्य नरसंहार, स्कूलों, अस्पतालों और दस हज़ार से भी अधिक रिहायशी इमारतों की तबाही तथा गाज़ा की कुल 18 लाख आबादी में से तीन लाख को बेघर-बेदर करके राहत शिविरों में रहने को मजबूर कर देने के बावजूद गाज़ा के लड़ाकों का प्रतिरोध टूटने के कोई आसार ज़ायनवादियों को नज़र नहीं आ रहे थे। 17 जुलाई को इज़रायल ने हमला छापामारों द्वारा बनायी गयी सुरंगों को नष्ट करने का बहाना बनाकर गाज़ा पर ज़मीनी हमले की शुरुआत की, पर उन्हें

अपने लक्ष्य में आंशिक सफलता ही मिली। सेना को इसी दौरान छापेमारों के हाथों सबसे अधिक नुकसान का सामना करना पड़ा और सेना के भीतर से यह दबाव बनने लगा कि ज़मीनी हमले की कार्रवाई से पीछे हट जाना चाहिए। मजबूर होकर 5 अगस्त को जब 72 घण्टे का युद्धविराम लागू हुआ, तो इज़रायल ने गाज़ा से अपनी सेना को वापस बुला लिया। हवाई हमलों की विनाशालीला इसके बाद भी 25 अगस्त तक लगातार जारी रही।

26 अगस्त को जो युद्धविराम समझौता लागू हुआ, वह इज़रायल के लिए वास्तव में चेहरा छिपाने और राहत की साँस लेने का एक मौका था। इज़रायली सेना में पचास दिनों के जनसंहार अभियान के बाद बेचैनी फैल गयी थी और यह विश्वास पुख्ता हो गया था कि गाज़ा निवासियों को तबतक पराजित नहीं किया जा सकता, जबतक कि पूरे गाज़ा को नेस्तनाबूद न कर दिया जाये। इज़रायल और उसके खुले और गुप्त मददगार यह जानते थे कि यह सम्भव नहीं। पचास दिनों के अपने हमले में ही उन्होंने देख लिया था कि जन-प्रतिरोध का दावानल न केवल फ़िलिस्तीन के पश्चिमी तट वाले हिस्से में फैल चुका है, बल्कि मिस्र, जार्डन, यमन और सभी खाड़ी देशों की जनता फ़िलिस्तीन के समर्थन में जिस उग्र ढंग से सड़कों पर उतरकर प्रदर्शन कर रही थी, उससे अरब शासक वर्गों को भी यह चिन्ता सताने लगी थी कि फ़िलिस्तीनी जनता से विश्वासघात करने और अमेरिकी साम्राज्यवाद के पिट्टू की भूमिका निभाने की कीमत कहीं उन्हें भारी जनउभारों के रूप में न चुकानी पड़े जाये। गाज़ा निवासी जानते थे कि यदि उन्हें सात वर्षों से जारी घरेबन्दी के नारकीय जीवन के ख़िलाफ़ लड़ना है तो उसकी भारी कीमत नरसंहार और तबाही के रूप में चुकानी पड़ेगी। लेकिन इज़रायल अपने महँगे प्रशिक्षण से तैयार और अति सुविधासम्पन्न सैनिकों की इस हद तक क्षति और अर्थव्यवस्था को पहुँचने वाले इतने नुकसान को झेलने के लिए तैयार नहीं था। वियतनाम में हारते हुए अमेरिका ने भी विनाश का ताण्डव रचा था। 2006 में लेबनान में भी हिज़बुल्लाह छापामारों से पिटकर पीछे हटने से पहले इज़रायल ने जमकर बमबारी की थी और बच्चों सहित आम नागरिकों की बड़े पैमाने पर हत्या की थी।

आइये अब इज़रायल की इस दूरगामी प्रभाव वाली पराजय की स्थिति पर सिलसिलेवार नज़र डालें। गाज़ा के

अपने इस जनसंहार अभियान पर इजरायल ने कुल 2.5 अरब डॉलर खर्च किये। यानी एक गाज़ा निवासी की हत्या करने के लिए उसे 12 लाख डॉलर खर्च करने पड़े। इस युद्ध और हमले के राकेट हमलों से दक्षिण इजरायल की उन्नत खेती इस वर्ष आधी से अधिक तबाह हो चुकी है। पर्यटन इजरायल में विदेशी मुद्रा की आय का प्रमुख ज़रिया है। 2007 के बाद इस वर्ष इजरायल में सबसे कम पर्यटक आये और पर्यटन उद्योग की यह मन्दी अगले कुछ वर्षों तक जारी रहने की आशंका है।

अभी भी इजरायली आम जनता का बड़ा हिस्सा जायनवादी प्रचार के प्रभाव में भय और असुरक्षा-बोध की सामूहिक मानसिकता से ग्रस्त होकर यही सोचता है कि फिलिस्तीनियों को लगातार दबा-कुचलकर नियन्त्रण में रखना इजरायल के अस्तित्व की शर्त है। गाज़ा पर हमले के पचास दिनों बाद भी इजरायल जब वस्तुतः कुछ नहीं हासिल कर सका और उसे उल्टे घेरेबन्दी में कुछ ढील देने के लिए विवश होना पड़ा तो, जायनवादी शासकों को यह भय सताने लगा कि आम इजरायलियों के भय के जिस मनोविज्ञान का वे अबतक लाभ उठाते रहे हैं वह आने वाले दिनों में उलटकर स्वयं उन्हीं के लिए अस्तित्व का संकट पैदा कर सकता है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पहली बार राजधानी तेल अवीव और अन्य इजरायली शहरों में लोगों ने (भले ही फ़िलहाल वे अल्पमत में हों) सड़कों पर उतरकर गाज़ा पर हमले का विरोध किया और जायनवादी कट्टरपन्थी गुण्डा गिरोहों से लोहा लिया। यही नहीं, यूरोप-अमेरिका की प्रबुद्ध यहूदी आबादी ने पहली बार इतना मुखर होकर जायनवादी कुकर्म का विरोध किया।

अमेरिकी मदद से हथियार उद्योग के अतिरिक्त इजरायल ने अपने निर्यातोन्मुख उपभोक्ता सामग्री उद्योग का गत कुछ दशकों के दौरान काफी विकास कर लिया था। गाज़ा हमले के समय पूरी दुनिया और विशेषकर यूरोप में मानवाधिकारों के प्रति सजग बुद्धिजीवियों और आम नागरिकों ने इजरायली उपभोक्ता सामग्रियों के बहिष्कार की संगठित और प्रभावी मुहिम चलायी, जिसका इजरायली विदेश व्यापार पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। इजरायल का निर्यातोन्मुख उपभोक्ता सामग्री उद्योग अबतक के गम्भीरतम संकट का सामना कर रहा है।

अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों के स्तर पर इजरायल को भारी नुकसान उठाना पड़ा है। जो यूरोपीय देश पहले से ही आर्थिक संकटों के कारण प्रदर्शनों-आन्दोलनों का सामना कर रहे थे, वहाँ पर जब गाज़ा पर हमले के विरुद्ध लगातार बड़े-बड़े जन-प्रदर्शन होने लगे तो अपनी साख को लेकर सरकारों की चिन्ता गहराने लगी और ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी जैसे इजरायल के कई पुराने सहयोगियों ने भी नेतन्याहू की नीतियों के प्रति असन्तोष प्रकट करना और हमले रोकने के लिए दबाव बनाना शुरू कर दिया। नीदरलैण्ड, स्कैंडिनेवियन देशों और कई अन्य छोटे यूरोपीय देशों ने तो इजरायल से व्यापार-सम्बन्धों को ही अतिसीमित कर दिया या एकदम रोक दिया। अमेरिकी

साम्राज्यवाद इजरायल का ऐसा संरक्षक है, जिसके बिना इजरायल का खड़ा रह पाना भी सम्भव नहीं। आज इजरायल का शस्त्रास्त्र और उपभोक्ता सामग्री उद्योग अतिविकसित है। 14000 डॉलर प्रति व्यक्ति आय (सऊदी अरब से भी अधिक) के साथ इजरायल दुनिया का 16वाँ सबसे धनी देश है, जो केवल दशकों की भारी अमेरिकी मदद से ही सम्भव हो सका है। इसके साथ ही 1952 से अमेरिका ऋण गारण्टी के तौर पर सालाना इजरायल को दो अरब डॉलर दे रहा है। अमेरिका के विदेशी सहायता बजट का एक तिहाई अकेले इजरायल को जाता है। अफ़गानिस्तान के बाद फ़िलहाल इजरायल अमेरिका से सबसे अधिक रकम सामरिक सहायता के रूप में हासिल करता है। अकेले 2012 में इजरायल को अमेरिका से 3.1 अरब डॉलर की सामरिक सहायता मिली। अमेरिका इजरायल को जो ऋण देता है, उसका बड़ा हिस्सा बाद में अनुदान में बदल दिया जाता है। यही नहीं इजरायल को यह छूट है कि वह अमेरिका से हासिल ऋण एवं अनुदान की राशि को (जो हर वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ में ही एकमुश्त मिल जाती है) वापस अमेरिकी ट्रेजरी बिल्स में निवेश करके अतिरिक्त ब्याज कमा ले।

कहा जाता है कि गम्भीर संकट का दबाव पड़ने पर लुटेरों के बीच के आपसी गँठजोड़ और सहबन्ध टूटने लगते हैं, उनमें दरारें और दरकनें पैदा होने लगती हैं और अन्तरविरोध बढ़ने लगते हैं। गाज़ा संकट के समय अमेरिका-इजरायल के सम्बन्धों में भी ऐसा देखने में आया। अमेरिकी शासक वर्ग अमेरिका के शहर-शहर में गाज़ा के समर्थन में हो रहे भारी प्रदर्शनों से हैरान-पेशान था। यहाँ तक कि न केवल अमेरिका की आम यहूदी आबादी का बहुलांश इजरायली हमले का विरोध कर रहा था, बल्कि (परम्परागत तौर पर डेमोक्रेटिक पार्टी समर्थक) इजरायल-समर्थक यहूदी मूल के पूँजीपतियों का धड़ा भी हमले की कार्रवाई लम्बी खिंचने और विश्वव्यापी विरोध के बाद, नेतन्याहू की नीतियों के प्रति नाराज़गी ज़ाहिर करने लगा और बराक ओबामा को फिर नेतन्याहू को फटकार लगाते हुए उसपर यह दबाव बनाने के लिए विवश होना पड़ा वह मिस्री राष्ट्रपति अलसिस्सी की मध्यस्थता वाले युद्ध-विराम प्रस्ताव को स्वीकार कर ले।

गाज़ा संकट में इजरायल की हार वास्तव में अमेरिकी साम्राज्यवाद की भी एक हार है। पहली बात यह कि गाज़ा की जनता के बहादुराना प्रतिरोध ने समूचे अरब क्षेत्र की जनता को फ़िलिस्तीन की जनता के साथ दृढ़ता से एकजुट कर दिया, इससे समूचे मध्यपूर्व की 'रीडिज़ाईनिंग' की जिस दूरगामी स्कीम पर आंग्ल-अमेरिकी धुरी काम कर रही थी, उसपर काफी हद तक पानी फिर गया। अल बग़दादी के आईएसआईएस का समुचित इस्तेमाल भी नहीं हो पाया और उल्टे वक्त से पहले ही वह भस्मासुर बनकर अमेरिकी हितों पर ही चोट करने लगा। फ़िलिस्तीन के मसले पर बग़दादी की चुप्पी ने एडवर्ड स्नोडेन के इस खुलासे की पुष्टि करने का काम किया कि यह नया स्वयंभू "खलीफ़ा" सी.आई.ए., मोसाद

और ब्रिटिश गुप्तचर एजेंसी द्वारा तैयार करके मैदान में उतारा गया है। अब यह बात और भी साफ हो चुकी है। गाज़ा संकट के बाद क्षेत्रीय पैमाने के अन्तरविरोधों में ऐसा बदलाव आया कि ईरान, सीरिया और हिज़बुल्लाह पर दबाव बनाकर उन्हें अलग-थलग करने तथा इराक़ के 'बाल्कनाइज़ेशन' (टुकड़े-टुकड़े करने) और मध्यपूर्व की नयी डिज़ायन में हाथ लगाने के अपने मंसूबे को कुछ विराम देने और रणनीति में कुछ बदलाव लाने के लिए अमेरिका को मजबूर होना पड़ा।

गाज़ा में इज़रायल की हार केवल अमेरिकी साम्राज्यवाद ही नहीं, बल्कि मिस्त्र, जार्डन, सऊदी अरब, क़तर और यमन सहित खाड़ी देशों के सभी अमेरिकापरस्त शासकों के लिए एक भारी झटका सिद्ध हुई है। सभी अरब देशों की जनता गाज़ा के समर्थन में जब लाखों की तादाद में सड़कों पर उतरकर प्रदर्शन कर रही थी तो फ़िलिस्तीनी लक्ष्य के प्रति गुद्दारी के लिए अपनी हुकूमतों के ख़िलाफ़ भी गहरी नफ़रत का इज़हार कर रही थी। क़तर का शासक वर्ग इस समय सुन्नी इस्लामी देशों के कथित नेतृत्व के लिए सऊदी अरब के शासकों से प्रतिस्पर्धा कर रहा है। अपने इसी उद्देश्य से, अरब जनता का समर्थन हासिल करने के लिए उसने गाज़ा की जनता और हमास का ज़्यादा मुखर समर्थन किया, लेकिन यह समर्थन वस्तुतः जुबानी जमाख़र्च से अधिक कुछ नहीं था। कमोबेश यही स्थिति तुर्की के राष्ट्राध्यक्ष एर्दोग़ान की भी थी, जो अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर साम्राज्यवादियों द्वारा खींचे जाने वाले पश्चिम एशिया के नये नक्शे में अपनी प्रभावी दखल बनाना चाहते हैं। गाज़ा की जनता की कुर्बानियों ने समूचे अरब क्षेत्र की जनता में साम्राज्यवाद-विरोधी भावनाओं और साम्राज्यवादपरस्त देशी पूँजीवादी सत्ताओं के विरुद्ध एकजुटता और भाईचारे की नयी लहर पैदा करने में अहम भूमिका निभायी है।

गाज़ा युद्ध के समय ही पश्चिमी तट पर ज़ायनवादियों के विरुद्ध आन्दोलनों-प्रदर्शनों की शुरुआत हो चुकी थी। इन पंक्तियों के लिखे जाने तक पश्चिमी तट के इलाक़े में लगातार जन प्रतिरोधों की ख़बरें मिल रही हैं और इज़रायल द्वारा अवैध बस्तियाँ बसाने के उद्देश्य से ज़मीन हड़पने की ताज़ा घटनाएँ इस आग में लगातार घी डालने का काम कर रही हैं। गाज़ा की घटनाओं के बाद पश्चिमी तट के क्षेत्र में समझौतापरस्त फ़िलिस्तीनी मुक्ति संगठन (पी.एल.ओ.) और महमूद अब्बास की सरकार की साख में भारी गिरावट आयी है। युद्धविराम समझौते के बाद, गाज़ा में इतनी अधिक तबाही के लिए हमास को जिम्मेदार ठहराने वाले महमूद अब्बास के बयान ने उनकी अलोकप्रियता को और अधिक बढ़ाया है। इस तरह गाज़ा के संघर्ष ने इज़रायल के साथ ही महमूद अब्बास को भी करारा झटका दिया है। आज यह महमूद अब्बास की मजबूरी है कि हमास की आलोचना करते हुए भी वह एकता सरकार बनाने की नयी पहल में भागीदार बने रहे। अन्यथा पश्चिमी तट के फ़िलिस्तीनी ही उनके ख़िलाफ़

सड़कों पर उतर पड़ेंगे।

यहाँ पर यह याद करना प्रासंगिक होगा कि जब पी. एल.ओ. ने समझौतापरस्ती का रास्ता नहीं अपनाया था, तब मिस्त्र के 'मुस्लिम ब्रदरहुड' से जुड़े धार्मिक कट्टरपन्थी संगठन 'हमास' को पी.एल.ओ. के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में उभारने में इज़रायली शासकों और अमेरिकी साम्राज्यवादियों का भी परोक्ष समर्थन था। मैड्रिड शान्ति सम्मेलन (1991) और ओस्लो समझौते (1993) के बाद पी.एल.ओ. के सेक्युलर, रैडिकल बुर्जुआ नेतृत्व और उसके सामाजिक जनवादी सहयोगियों ने संघर्ष के बजाय समझौते के ज़रिये ज़ायनवादियों और उनके अमेरिकी सरपरस्तों से कुछ हासिल करने की कोशिशें शुरू कर दीं। जैसे-जैसे समझौते की यह रणनीति समझौतापरस्ती में बदलती गयी और साथ ही इसकी व्यर्थता भी उजागर होती चली गयी, वैसे-वैसे हमास का सामाजिक-समर्थन आधार विस्तारित होता चला गया। दरअसल पी.एल.ओ. के जुझारूपन खोते बुर्जुआ नेतृत्व से मोहभंग की शुरुआत तो 1987 के उस व्यापक जनउभार से ही हो चुकी थी, जिसे पहले 'इन्तिफ़ादा' के नाम से जाना जाता है। पी.एल.ओ. द्वारा समझौतापरस्ती का रास्ता अपनाने के बाद अमेरिकी-इज़रायली स्कीम में हमास को परोक्ष शह देने की न ज़रूरत रह गयी थी, न ही गुंजाइश। इधर मुक्तिकामी जनता की आकांक्षाओं के दबाव तले हमास के चरित्र में भी बदलाव आया। हमास आज 'अल कायदा' या आई.एस.आई.एस. जैसा या 'मुस्लिम ब्रदरहुड' जैसा कट्टरपन्थी आतंकवादी संगठन नहीं है (ऐसे कुछ अन्य छोटे संगठन वहाँ हैं)। यह एक व्यापक जनान्दोलन है, जिसका सशस्त्र दस्ता भी है। यह मुक्त फ़िलिस्तीन में शरिया क़ानून लागू करने, स्त्रियों के लिए पर्दापोशी अनिवार्य करने जैसी या दुनिया के पैमाने पर जेहाद छेड़ने जैसी बातें नहीं करता। सच्चाई यह है कि फ़िलिस्तीन में यह सम्भव नहीं। फ़िलिस्तीनी जन पारम्परिक तौर पर अरब क्षेत्र के सबसे आधुनिक और शिक्षित लोग रहे हैं। हमास का आज सिर्फ़ इसलिए व्यापक समर्थन आधार है, क्योंकि वह ज़ायनवादियों के विरुद्ध जुझारू ढंग से लड़ रहा है। जैसे ही उसकी यह भूमिका नहीं रहेगी, या वह जनता पर किसी किस्म की कट्टरपन्थी निरंकुश सत्ता थोपने का प्रयास करेगा वैसे ही कोई नया रैडिकल विकल्प हमास का स्थान ले लेगा। यह याद रखना होगा कि पी.एल.ओ. में शामिल जॉर्ज हबाश के नेतृत्व वाले वामपन्थी संगठन 'पी.एफ.एल.पी.' ने जब मुख्य घटक (राष्ट्रीय बुर्जुआ चरित्र वाले) 'अल फ़तह' के पिछलग्गू की भूमिका अपनाते हुए समझौते का मार्ग चुना और पी.एफ.एल.पी. से अलग हुए रैडिकल वाम धड़े भी जब अपनी यांत्रिक, संकीर्णतावादी और वाम दुस्साहसवादी ग़लतियों के कारण कोई विकल्प नहीं बन सके, तो इन्हीं स्थितियों में हमास अपनी ताक़त और आधार बढ़ाने में सफल हुआ था।

बहरहाल, फ़िलहाल गाज़ा पट्टी के साथ ही पश्चिमी तट के इलाक़े में भी हमास का आधार-विस्तार पी.एल.ओ.

(पृष्ठ 22 पर जारी)

इस्लामिक स्टेट (आईएस) : अमेरिकी साम्राज्यवाद का नया भस्मासुर

• आनन्द

इस साल के जून के महीने में यकायक इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक एण्ड सीरिया (आईएसआईएस जिसे अब आईएस के नाम से जाना जाता है) नामक एक इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन द्वारा इराक में की जाने वाली मध्ययुगीन बर्बर करतूतों की खबरें पूरी दुनिया में सुर्खियाँ बटोरने लगीं। आईएस के जेहादी लड़ाके तेजी से एक के बाद एक इराक के कई मुख्य शहरों पर कब्जा करने लगे और यहाँ तक कि वे इराक की राजधानी बग़दाद के प्रवेशद्वार तक आ पहुँचे। यही नहीं, इस संगठन के सरगना अबू बक्र अल-बग़दादी ने अपने आपको समूचे इस्लामिक जगत का खलीफ़ा तक घोषित कर दिया। पश्चिम एशिया की राजनीति से अनजान लोगों के लिए भले ही आईएसआईएस एक नया नाम हो, परन्तु उस पूरे क्षेत्र की राजनीति एवं वहाँ अमेरिका-नीत साम्राज्यवादी हस्तक्षेप से वाकिफ़ लोग इस संगठन से परिचित थे, हालाँकि पश्चिम एशिया के प्रकाण्ड रणनीतिक विश्लेषकों के लिए भी इसका इराक में इतनी तेजी से उभार और फैलाव विस्मयकारी था। अभी कुछ महीनों पहले तक आईएसआईएस के जेहादी लड़ाके अमेरिकी, ब्रिटिश, फ़्रांसीसी साम्राज्यवादियों और अरब देशों में उनके टट्टुओं मसलन सउदी अरब, क़तर और कुवैत की शह पर सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल-असद का तख़्तापलट करने के उद्देश्य से वहाँ जारी गृहयुद्ध में भाग ले रहे थे। उस समय अमेरिका की नज़र में वे “अच्छे” जेहादी थे क्योंकि वे अमेरिकी हितों के अनुकूल काम कर रहे थे। लेकिन अब जब वे अमेरिका के हाथों से निकलते दिख रहे हैं तो वे बुरे जेहादी हो गये हैं और उन पर नकेल कसने की कवायदें शुरू हो गयी हैं। दरअसल इस्लामिक स्टेट अल-कायदा और तालिबान की तर्ज पर अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा पैदा किया गया और पाला-पोसा गया नया भस्मासुर है जो अब अपने आका को ही शिकार बनाने लगा है।

कौन है यह इस्लामिक स्टेट?

इस्लामिक स्टेट (आईएस), जिसको आईएसआईएस के नाम से भी जाना जाता है, अल-कायदा का ही एक घटक है जिसने हाल ही में दज़ला और फ़रात नदियों के किनारे स्थित उत्तरी सीरिया एवं उत्तरी और मध्य इराक के अनेक महत्वपूर्ण शहरों, तेलशोधक कारख़ानों और बाँधों पर अपना कब्जा जमा लिया है। इस लेख के लिखे जाने तक इराक के लगभग एक तिहाई क्षेत्र पर इसका कब्जा हो चुका है। इस आतंकवादी संगठन ने

इराक में 2003 के अमेरिकी हमले (ऑपरेशन शॉक एण्ड ऑ) के बाद वहाँ अपनी जड़ें जमानी शुरू की। ग़ौरतलब है कि इस हमले के पहले तक इराक में अल-कायदा का नामोनिशान तक नहीं था। सद्दाम हुसैन बेशक एक तानाशाह था जिसने अपने देश की जनता पर अकथनीय जुल्म ढाये, परन्तु उसके शासन में शिया-सुन्नी की संकीर्णतावादी कट्टरपन्थी प्रवृत्तियाँ इराक़ी समाज एवं वहाँ की राजनीति में आम तौर पर अनुपस्थित थीं अथवा हाशिये पर थीं। इराक में शिया-सुन्नी में आपस में विवाह आम बात थी। अमेरिकी हमले में सद्दाम हुसैन के सत्ताच्युत होने के बाद इराक में घोर अराजकता, पन्थीय और नृजातीय संकीर्णता और इस्लामिक कट्टरपन्थियों के पनपने की जमीन तैयार हुई। साथ ही इराक में अमेरिकी कब्जे और सेना की उपस्थिति के खिलाफ़ व्यापक जनउभार भी शुरू हो गया। इस जनउभार को काबू में करने के लिए अमेरिकी साम्राज्यवादियों ने योजनाबद्ध तरीके से इराक़ी समाज में शिया-सुन्नी की पन्थीय संकीर्णता एवं उत्तरी इराक में रहने वाली कुर्द नृजातीय आबादी में अलगाववादी भावनाओं को हवा देना शुरू किया। “बाँटो और राज करो” की इस साम्राज्यवादी नीति का नतीजा यह हुआ कि इराक में एक गृहयुद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी। शियाओं एवं सुन्नियों की अलग-अलग मिलीशिया और फ़िदायी दस्ते बनने लगे जो एक दूसरे के खून के प्यासे हो गये। अमेरिकी साम्राज्यवादियों की शह पर बनने वाली राजनीतिक संरचना में शिया-सुन्नी विवाद को हवा देने के लिए ऐसे प्रावधान डाले गये जिससे वहाँ की राजनीति में बहुसंख्यक शियाओं का दबदबा कायम हो सके।

ग़ौरतलब है कि इराक में शियाओं की बहुसंख्या होने के बावजूद अमेरिकी हमले से पहले तक वहाँ की राजनीति में शियाओं के वर्चस्व जैसी कोई बात नहीं थी। सद्दाम हुसैन स्वयं अल्पसंख्यक सुन्नी समाज से आता था और उसकी बाथ पार्टी में शिया और सुन्नी दोनों ही सदस्य थे। अमेरिकी हमले के बाद इराक में जो राजनीतिक संरचना अस्तित्व में आयी उसमें संवैधानिक रूप से यह प्रावधान किया गया कि वहाँ के सबसे रसूख़दार प्रधानमन्त्री के ओहदे पर शिया ही क़ाबिज़ हो सकता है एवं राष्ट्रपति तथा संसद के स्पीकर जैसे कम महत्वपूर्ण ओहदे क्रमशः सुन्नियों तथा कुर्दों के लिए सुरक्षित रखे गये। लेबनान मॉडल पर किये गये इस विचित्र संवैधानिक-राजनीतिक प्रबन्ध का नतीजा यह हुआ कि समय बीतने के साथ ही साथ वहाँ की राजनीति एवं अर्थव्यवस्था में शियाओं का दबदबा

बढ़ता गया और सुन्नी एवं कुर्द हाशिये पर जाते गये। इसकी वजह से सुन्नियों एवं कुर्दों में अलगाववादी भावना पनपने लगी। अमेरिकी हमले के बाद इराक की अर्थव्यवस्था तहस-नहस हो गयी, बेरोज़गारी और महँगाई आसमान छूने लगी। हालाँकि इस अराजकता का दंश इराक की जनता के हर हिस्से ने झेला, लेकिन सुन्नी जो सद्दाम हुसैन के शासनकाल में बेहतर स्थिति में थे, उनकी तो मानो पूरी दुनिया ही तबाह हो गयी।

ये वो हालात थे जिनमें सुन्नी इस्लामिक कट्टरपन्थी अल-कायदा ने इराक में पैर जमाना शुरू किया। इसका शुरुआती नाम 'अल-कायदा इन मेसोपोटामिया' था जिसकी स्थापना इराक के ताल अफार नामक शहर में हुई थी। शुरुआत में इसका नेतृत्व जार्जनी आतंकवादी अबू मुसब अल-जुरकावी के हाथों में था जिसे ओसामा बिन लादेन तक ने अत्यधिक हिंसक और संकीर्ण माना था। यही संगठन 2006 में इस्लामिक स्टेट आफ इराक (आईएसआई) के नाम से जाना जाने लगा जो बाद में आईएसआईएस या सिर्फ़ आईएस के नाम से प्रचलित हुआ। इसका मौजूदा मुखिया अबू बक्र अल-बगदादी है जो 2003 तक एक छुटपैया चोर-उचक्का था। इराक में अमेरिकी हमले के बाद अमेरिकी डिटेन्शन सेण्टर में प्रताड़ना झेलने के बाद वह आतंकवाद की दिशा में बढ़ा और आईएस जैसे आतंकवादी संगठन का मुखिया बन बैठा। इस संगठन ने मुक्तदा अल-सद्र की महदी शिया सेना और बद्र एवं सलाम ब्रिगेड जैसी शिया मिलीशिया से भी लोहा लिया था। लेकिन यह अभी भी महज़ एक छोटा सा जेहादी समूह भर था जिसके पास इतनी ताकत हरगिज़ नहीं थी कि वह इराक के किसी शहर पर कब्ज़ा करने की सोच भी सकता था। आईएसआईएस की ताकत में इज़ाफ़ा होना तब शुरू हुआ जब 2011 के बाद से सीरिया में जारी गृहयुद्ध में इसने विद्रोहियों की तरफ़ से शिरकत करनी शुरू की।

आईएस की बढ़ती ताकत की वजह

2011 में ट्यूनिशिया एवं मिस्र में जनविद्रोहों के बाद अरब के तमाम देशों की तरह सीरिया में भी निरंकुश शासन एवं आर्थिक संकट के विरोध में व्यापक जनउभार देखने को आया। अमेरिकी



आईएस के कब्ज़े वाले क्षेत्र

एवं पश्चिमी यूरोपीय साम्राज्यवादियों को इस जनउभार में सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल-असद (जिसकी क़रीबी रूस और इरान से है) का तख़्तापलट करने की सम्भावना दिखी। साम्राज्यवादियों की मंशा यह थी कि जिस प्रकार वे लीबिया में इस्लामिक कट्टरपन्थी विद्रोहियों को सैन्य एवं वित्तीय मदद देकर क़द्दाफी का तख़्तापलट करने में कामयाब रहे (यह बात दीग़र है कि लीबिया में अभी भी राजनीतिक अस्थिरता एवं अराजकता का माहौल व्याप्त है), उसी प्रकार सीरिया में भी बशर अल-सद्र का भी तख़्तापलट किया जा सकता है और वहाँ एक कठपुतली सरकार बनवाई जा सकती है। इसके लिए उन्होंने सीरिया में सुन्नी कट्टरपन्थी विद्रोहियों को बढ़ावा दिया जाये। असद सरकार के खिलाफ़ जेहाद का एलान करने वाले लड़ाकों को मुद्रा, हथियार एवं सैन्य प्रशिक्षण देने के काम में उनकी मदद सउदी अरब, कतर एवं कुवैत के शेखों और शाहों के साथ ही साथ तुर्की की सरकार ने की। आईएस के अतिरिक्त सीरिया में जेहाद का एलान करने वाले लड़ाकों में एक अन्य इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन जबत अल-नूसरा भी है जिसको अल-कायदा की सीरिया शाखा कहा जाता है।

लेकिन बशर अल-असद की सरकार क़द्दाफी की सरकार जितनी कमज़ोर न थी, उसकी सैन्य क्षमता एवं सामाजिक आधार कहीं ज़्यादा व्यापक थे। नतीजतन साम्राज्यवादियों को सीरिया में बशर अल-असद का तख़्तापलट करने में अभी तक कोई ख़ास कामयाबी नहीं हासिल हुई है। सीरिया में विद्रोही जिहादियों ने महज़ कुछ ही शहरों को अपने कब्ज़े में लेने में कामयाबी हासिल की है। लेकिन इस प्रक्रिया में आईएस जैसे खूँखार जेहादी लड़ाकों को अकूत धनसामग्री एवं अत्याधुनिक हथियार (खासकर टोयोटा ट्रक और हॉवितज़र बन्दूकें) ज़रूर मिल गये जिससे उनकी ताकत में ज़बर्दस्त इज़ाफ़ा हुआ।

पिछले साल के अन्त में आईएसआईएस ने सीरिया-इराक की सीमा को पार कर इराक में एक बार फिर से नयी ताकत के साथ प्रवेश किया। इस साल जनवरी में उसने इराक के अनबार प्रदेश के रमादी एवं फलूजा शहरों पर कब्ज़ा कर लिया। जून में उसने समारा, मोसुल, निनेवेह एवं सद्दाम हुसैन के गृह शहर तिकरित पर कब्ज़ा कर लिया। जून के अन्त तक इराक की सीरिया एवं जार्जनी की सीमा पर आईएस का कब्ज़ा हो चुका था और उसके जेहादी लड़ाके बग़दाद के प्रवेशद्वार तक पहुँच चुके थे।

सीरिया में प्राप्त मुद्रा, हथियारों एवं सैन्य प्रशिक्षण के अतिरिक्त आईएस की बढ़ती ताकत का एक अन्य प्रमुख कारण सद्दाम हुसैन की बाथ पार्टी से जुड़े सेना के जनरलों एवं नौकरशाहों के साथ उसका गठबंधन रहा। ग़ौरतलब है कि 2003 के अमेरिकी हमले के बाद से अमेरिका के निर्देश पर सुनियोजित रूप से वहाँ विबाधीकरण (डीबाथीफिकेशन) की मुहिम चलायी गयी जिसकी वजह से बाथ पार्टी से जुड़े सैन्य के अधिकारी और नौकरशाह बेरोज़गार होकर वस्तुतः सड़क पर आ गये। सैन्य अधिकारियों ने 'मिलिटरी काउंसिल' नाम से एक संगठन बनाया जो इस वक़्त आईएस के लड़ाकों को रणनीतिक मार्गदर्शन कर रहा है। आईएस के दूसरे सहयोगी

नक्शबन्दी आन्दोलन से जुड़े लड़ाके हैं जिनका नेतृत्व सद्दाम हुसैन की सरकार में उपराष्ट्रपति एवं पूर्व बाथ पार्टी का सदस्य इज्जत अल-दौरी कर रहा है। हालाँकि नक्शबन्दी आन्दोलन इस्लाम की सूफी परम्परा से प्रेरित है, लेकिन उसने आईएस जैसे कट्टरपन्थी संगठन से एक अवसरवादी गठजोड़ बना लिया है जिससे आईएस की ताकत में ज़बरदस्त इज़ाफ़ा हुआ है।

आईएस की गुरिल्ला फौज में इराक़ और अरब जगत के इस्लामिक कट्टरपन्थियों के अतिरिक्त चेचेन्या, पाकिस्तान एवं यूरोपीय देशों के इस्लामिक कट्टरपन्थी लड़ाके हैं। भारत से भी कुछ मुस्लिम युवाओं के आईएस में शामिल होने की ख़बरें आयी हैं। इराक़ में इतनी तेज़ी से आईएस के प्रभुत्व के बढ़ने के पीछे एक अन्य कारण अमेरिकी हमले के बाद से इराक़ी सेना के मनोबल में भारी गिरावट भी रहा जिसकी वजह से वे आईएस से लड़ने में फिसड़ड़ी साबित हुए। आईएस ने जिन शहरों पर कब्ज़ा किया वहाँ भारी मात्रा में इराक़ी सेना के हथियारों और लूटपाट से अर्जित अकूत धनदौलत से भी आईएस की ताकत में इज़ाफ़ा हुआ। इसके अतिरिक्त मोसुल और किरकुक जैसे स्थानों में स्थित तेलों के कुओं पर कब्ज़े से भी उनकी आर्थिक ताकत बढ़ी। लेकिन जितनी तेज़ी से इसकी ताकत बढ़ी उतनी ही तेज़ी से अरब जगत की आम जनता के बीच इसके प्रतिक्रियावादी चरित्र का खुलासा भी हुआ। जब यह इराक़ में एक के बाद एक शहरों पर कब्ज़ा करने में व्यस्त था उसी दौरान जॉयनवादी इज़रायल गाज़ा की जनता पर अकथनीय क़हर बरपा रहा था। लेकिन पूरी दुनिया में इस्लामिक राज्य का स्थापित करने का दावा करने वाले इस आतंकवादी संगठन के पास फ़िलस्तीन की जनता के शानदार और बहादुराना संघर्ष में भाग लेना तो दूर उनके समर्थन में एक शब्द तक नहीं बोले।

पश्चिम एशिया में अमेरिकी साम्राज्यवाद की इस्लामिक कट्टरपन्थ से गलबहियों का लम्बा इतिहास

आईएस जैसे बर्बर इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन की अमेरिकी साम्राज्यवादी नीतियों द्वारा पैदाइश और उनका पालन-पोषण कोई नयी बात नहीं है। दरअसल द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से ही कम्युनिज़्म और धर्मनिरपेक्ष अरब राष्ट्रवाद को मात देने के लिए अमेरिका इस्लामिक दक्षिणपन्थ के साथ गठजोड़ बनाता आया है जिसकी वजह से समय-समय पर वहाँ ऐसे इस्लामिक कट्टरपन्थी संगठन उभरते रहे हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले तक अरब और समूचे मध्यपूर्व में तेल के कुओं की खोज हो चुकी थी। इस युद्ध से पहले ही सउदी अरब के सुल्तान इब्न बिन सउद के साथ अमेरिका के घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे। सउदी अरब में 1938 में तेल की खोज हो जाने के बाद से ये सम्बन्ध और प्रगाढ़ होते गये। गौरतलब है कि पूरी दुनिया में वहाबी-सलाफी-तकफ़ीरी नामक इस्लामिक कट्टरपन्थी धाराओं को फैलाने का काम सउदी अरब से ही संचालित होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के ठीक बाद प्रस्तुत की गयी “ट्रूमैन डॉक्ट्रिन” के तहत अमेरिका ने इस्लामिक दक्षिणपन्थ की हवा

बहाने की नीति को औपचारिक जामा पहनाया गया। इसके तहत अरब के शाहों एवं शेखों की सत्ताओं को अपना सहयोगी घोषित किया गया। अमेरिकी राष्ट्रपति आइज़ेनहावर ने इसी नीति के तहत मुस्लिम ब्रदरहुड को व्हाइट हाउस के हॉल में आमंत्रित किया।

1967 के अरब-इज़रायल युद्ध के बाद अरब के देशों में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद की धारा कमज़ोर पड़ने लगी और दक्षिणपन्थी इस्लामिक कट्टरपन्थी धारा समूचे मध्यपूर्व में अपना दबदबा बनाने में कामयाब हुई। 1979 में इरान में इस्लामिक क्रान्ति के बाद से शिया कट्टरपन्थ की धारा भी मजबूती से उभरी। 1979 में ही उदारवादी माने जाने वाले अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर के दौर में अफ़गानिस्तान की वामपन्थी सरकार का तख़्तापलट करने के लिए एवं सोवियत साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का मुक़ाबला करने के लिए मुजाहिदीनों को हथियारों और मुद्रा की सप्लाई की गयी। कार्टर के राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ब्रजेंस्की ने अफ़गानिस्तान और पाकिस्तान की सीमा से लगे ख़ैबर दर्रे का दौरा किया और एक हाथ में क़ुरान और दूसरे हाथ में बन्दूक लेकर वहाँ के जेहादियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि अब यही उन्हें काफ़िरों से मुक्ति दिला सकते हैं। यही नहीं पाकिस्तान के तानाशाह ज़ियाउल हक़ और वहाँ की खुफ़िया एजेंसी आईएसआई के इस्लामीकरण की परियोजना को अफ़गानी मुजाहिदीनों के जेहाद से जोड़कर अफ़गानिस्तान और पाकिस्तान में इस्लामिक कट्टरपन्थ की ज़मीन पुख़्ता की गयी। हद तो तब हो गयी जब अमेरिकी राष्ट्रपति रोनल्ड रीगन ने अफ़गानी मुजाहिदीनों को व्हाइट हाउस में ससम्मान आमंत्रित किया और उनको सम्बोधित करते हुए कहा कि वे नैतिक रूप से अमेरिका की स्थापना करने वाले वाशिंगटन और जैफ़रसन जैसे नेताओं के समतुल्य हैं। रीगन ने मुजाहिदीनों के जेहाद को इतना महत्त्वपूर्ण माना कि उस समय लांच होने वाले अमेरिकी अन्तरिक्षयान कोलंबिया को अफ़गानियों के संघर्ष के नाम समर्पित कर डाला।

यह बात अब किसी से छिपी नहीं है कि अल-कायदा, तालिबान और ओसामा बिन लादेन अफ़गानिस्तान में अमेरिका द्वारा पोषित भस्मासुर थे जो बाद में अपने आका को ही अपना निशाना बनाने लगे। यहाँ तक कि सद्दाम हुसैन को भी अमेरिका ने इराक़-इरान युद्ध में सहयोग दिया। बाद में सद्दाम हुसैन भी अमेरिका का दुश्मन हो गया क्योंकि वह कुवैत के तेल के कुओं से अमेरिकी पिट्टुयों का नियन्त्रण हटाकर उनको अपने कब्ज़े में करना चाहता था।

2003 में इराक़ में अमेरिकी हमले के वक़्त अमेरिका के नव-रूढ़िवादियों की दीर्घकालिक योजना यह थी कि संकीर्ण पन्थों के कट्टरपन्थियों को भड़काकर इराक़ सहित समूचे अरब जगत के नक्शे को अपनी सहूलियत से पुनः खींचा जाये। उनकी योजना इराक़ में सत्ता परिवर्तन के बाद सीरिया और इरान के नक्शे को भी बदलने की थी। जैसा कि मध्यपूर्व क्षेत्र के विश्लेषक एजाज़ अहमद ने इंगित किया है कि उनकी 30 साल की उस योजना में अभी मात्र 11 वर्ष हुए हैं। यह बात दीगर है कि कभी-कभी हालात साम्राज्यवादियों के काबू से

आह्वान यहाँ से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश

● जनचेतना, 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर, फोन: 8738863640 ● जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ, फोन: 8853093555 ● जनचेतना स्टॉल, कॉफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 बजे से 8.30 तक) ● युनिवर्सल बैंक सेण्टर, कपूरथला, लखनऊ ● प्रसेन, फोन: 8115491369 ● प्रोग्रेसिव बुक स्टॉल, विश्वनाथ मन्दिर गेट, बीएचयू वाराणसी ● विशाल विक्रम सिंह रूम नं-310 बिड़ला हॉस्टल-बी बीएचयू वाराणसी, ● कुँवर सन्दीप कुमार सिंह-कुसुम विला, कॉलेज रोड, मन्दिर लेन, उन्नाव

दिल्ली

● अभिनव सिन्हा, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर ● पी.पी.एच., जे.एन.यू. ● गीता बुक सेण्टर, जे.एन.यू. ● हेम बुक सेण्टर, जे.एन.यू. ● सेण्ट्रल न्यूज एजेंसी, कनॉट प्लेस ● पी.पी.एच. बुकशॉप, कनॉट प्लेस

बिहार

● देबाशीष बराट, द्वारा, आर.के.बनर्जी, गोकुल पथ, नाला पार, रोड सं. 2, उत्तरी पटेल नगर, पटना-800024 ● श्री रामनारायण राय, प्रोफेसर कॉलोनी, सी.एन. कॉलेज, साहेबगंज, पो. करनौल, जिला मुजफ्फरपुर ● डॉ. गिरिजाशंकर मोदी, 'शब्दसदन', सिकन्दरपुर, मिरजानहाट, भागलपुर ● प्रगतिशील साहित्य सदन, पटना कालेज गेट के सामने, अशोक राजपथ, पटना ● श्री चन्द्रेश्वर, एल.एच.-3/8, हाउसिंग कॉलोनी, चन्दवा, आरा, जिला-भोजपुर ● सन्तोष ओझा द्वारा रघुनाथ ओझा, शिवचन्द्र पथ, काली मन्दिर रोड, हनुमान नगर, कंकड़ बाग, पटना ● रामप्रवेश कुमार, ग्राम व पोस्ट-रुस्तमपुर (बेलदारी पर) थाना, हुलासगंज, वाया-इस्लामपुर, नालन्दा

राजस्थान

● चन्द्रशेखर, लोकायत प्रकाशन, 883, लोधो की गली, एम.डी. रोड, जयपुर ● ओ.पी. गुर्जर, 137, गोल्फ कोर्स स्कीम, एयर फ़ोर्स, जोधपुर

हरियाणा

● डॉ. सुखदेव हुन्दल, ग्राम+पोस्ट सन्तनगर वाया जीवन नगर, सिरसा ● रमेश खटकड़, अमृता मेडिकोज, ओल्ड बस स्टैण्ड रोड, चोपड़ा पट्टी, नियर धोलाकुआं, नरवाना, जिला-जीन्दा

महाराष्ट्र

● नारायण, रूम नं. 7, धनलक्ष्मी कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी, प्लाट नं. बी-6, सेक्टर 12, खारघर, नवी मुम्बई, फ़ोन: 09619039793 ● पीपुल्स बुक हाउस, मेहरजी हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट फ़ोर्ट, मुम्बई ● खन्ना जी, विश्वभारती

प्रकाशन, धनवते चैम्बर्स, सीतावर्दी, नागपुर ● श्याम सोनार (प्रोग्रेसिव स्टूडेंट्स फ़ोरम) 3/3, शुभकामना सोसायटी, लक्ष्मीपार्क, फ़ेज-2 के बाजू में, पाड़ा नं-2, यशोधन नगर, ठाणे (पश्चिम) महाराष्ट्र ● गोपाल नायडू, कौशल्या अपार्टमेण्ट चूना भट्टी, अजनी रोड, नागपुर ● शिरीष मेढी, डी-402, रवि इस्टेट ऑफ़ पोखरन रोड नं-1 ठाणे ● हर्ष ठाकोर, हरबंश, चतुर्थ तल, नूतन लक्ष्मी सोसायटी, 8th रोड, जूहू विले पारले डेवलपमेण्ट स्कीम, मुम्बई

पंजाब

● लखविन्दर, शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, 33 फुटा रोड, गली नं-5, लक्ष्मणनगर, गियासपुरा लुधियाना ● पंजाब बुक सेण्टर, एस.सी.ओ.-1126-27, सेक्टर-22 बी, चण्डीगढ़ ● लायल बुक डिपो, पंजाब यूनीवर्सिटी मार्केट, सेक्टर-14, चण्डीगढ़ ● सुरिन्दर स्टेशनर्स, शॉप नम्बर-35, सेक्टर-14, पी.यू. मार्केट, सेक्टर-14, चण्डीगढ़ ● एलाइड बुक सेण्टर, शॉप नम्बर-50, सेक्टर-15डी, चण्डीगढ़ ● स्टैण्डर्ड बुक डिपो, एस.सी.ओ.-78, सेक्टर-15, चण्डीगढ़ ● मदान बुक डिपो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला ● जे.के. न्यूज एजेंसी, बस स्टैण्ड के पीछे, पटियाला ● बस स्टैण्ड में लुधियाना काउण्टर के सामने

मध्यप्रदेश

● संजय बुक स्टॉल, शाप नं. 43, ग्वालियर।

हिमाचल प्रदेश

● सुरेश सेन "निशान्त", गाँव सलाह, डाक. सुन्दरनगर-1, जिला-मण्डी।

उत्तराखण्ड

● संजय वर्मा, वर्मा एजेंसी, हनुमान चौक सोमेश्वर, पो.-सोमेश्वर, जिला-अल्मोड़ा ● राजेन्द्र जोशी द्वारा श्रमजीवी पत्रकार संगठन द्वितीय तल, जिला पंचायत भवन, पिथौरागढ़ ● 'दखल' द्वारा श्री रमाशंकर नैलवाल, निकट उत्तर उजाला ऑफिस, चौहान पाटा, मालरोड, अल्मोड़ा ● अल्मोड़ा किताबघर द्वारा श्री शमशेर सिंह बिष्ट नियर यूनिवर्सिटी कैम्पस, मालरोड, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़

जम्मू

● श्री पुरुषोत्तम, लेक्चरर, हिन्दी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, ● राहुल 139, नेहरू हास्टल, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

छत्तीसगढ़

● श्री देवांशु पाल, सं. "पाठ" गायत्री विहार, गली विनोबा नगर, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

बाहर हो जाते हैं, वे अपने ही रचे तिलिस्म में फँस जाते हैं और योजनाबद्ध तरीके से पैदा किये गये भस्मासुर अपने आका को ही काट खाने दौड़ने लगते हैं।

हालिया घटनाक्रम

अगस्त के महीने में आईएस के लड़ाके उत्तरी इराक के कुर्दिस्तान क्षेत्र की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे। कुर्दिस्तान इराक के तेल संसाधन सम्पन्न क्षेत्रों में से एक है जहाँ एक्सान मोबिल और शेवरान जैसी अमेरिकी तेल कम्पनियाँ तेल के कुओं से तेल निकालकर अकूत मुनाफा कमाती हैं। कुर्दिस्तान की राजधानी इरबिल में इन तमाम तेल कम्पनियों के क्षेत्रीय कार्यालय हैं। अमेरिका का दूतावास भी इरबिल में स्थित है और इसके अलावा यह अमेरिका के सैन्य और खुफ़िया अधिकारियों का गढ़ भी है। इरबिल में आईएस के कब्जे की सम्भावना से अमेरिका सकते में आ गया। आनन-फ़ानन में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा, जो अब तक आईएस को एक छोटा-मोटा संगठन बताते थे, ने कुर्दिस्तान में आईएस के कब्जे वाले क्षेत्रों में अमेरिकी वायुसेना को हवाई हमले का आदेश दे दिया। दुनिया भर की पूँजीवादी मीडिया में यह प्रचारित किया गया कि अमेरिका ने आईएस के डर से सिंजर पहाड़ों में छिपे यज़ीदी समुदाय के लोगों को बचाने के लिए यह हमला किया था। लेकिन सच्चाई यह थी कि यह हमला आईएस को इरबिल से दूर हटाने के लिए किया गया था। इस हमले की दूसरा मक़सद मोसुल बाँध पर से आईएस के कब्जे से छुड़ाना था जिससे इराक के बड़े हिस्से में बिजली और पानी भेजी जाती है। यज़ीदी समुदाय के लोगों को बचाने का काम दरअसल सीरिया स्थित वार्डपीजी और तुर्की की पीकेके (कुर्दिश वर्कर्स पार्टी) के जमीनी लड़ाकों ने किया था। गौरतलब है कि अमेरिका ने पीकेके को आतंकवादी संगठन घोषित कर रखा है। कुर्दिस्तान के पेशमेर्गा लड़ाके आईएस का अकेले सामना कर पाने में पूरी तरह विफल रहे। अब अमेरिका और यूरोपीय देश पेशमेर्गा को और आधुनिक हथियारों की सप्लाई की बात कर रहे हैं।

अगस्त के अन्त में आईएस ने बग़दाद, किरकुक और इरबिल जैसे इराक के प्रमुख शहरों पर एक साथ बमबारी शुरू कर दी जिसमें सैकड़ों लोग मारे गये। इसके अलावा दो अमेरिकी पत्रकारों जैकब फोली और स्टीवेन सॉटलॉफ की आईएस ने गला काटकर हत्या कर दी और इस बर्बर कृत्य का वीडियो सोशल मीडिया पर अपलोड कर दिया जिसके बाद से अमेरिका की घरेलू राजनीति में इराक में पुनः सेना भेजने का सैन्य कार्रवाई की माँग और तेज़ हो गयी है। इसके पहले ओबामा सरकार ने इराक के प्रधानमन्त्री नूरी अल-मलीकी को बलि का बकरा बनाते हुए उसकी जगह हैदर अल-अबादी को प्रधानमन्त्री बनाया। अमेरिका को यह उम्मीद है कि पश्चिम में शिक्षित होने की वजह से अल-अबादी अमेरिका के हाथों की कठपुतली का काम अल-मलीकी से बेहतर ढंग से कर पायेगा। गौरतलब है कि अल-अबादी को इरान का भी समर्थन प्राप्त है। चूँकि इरान की सीमा के काफी निकट तक आईएस का कब्ज़ा हो चुका है इसलिए इरान भी आईएस को एक बड़े खतरे के रूप

में देख रहा है। इसी तरह सीरिया ने भी आईएस के प्रभाव को कम करने के लिए अपने क्षेत्र को अमेरिकी हवाई बमबारी के लिए अनुमति देने के संकेत दे दिये हैं। इसे साम्राज्यवादी राजनीति की विडम्बना ही कही जायेगी कि अभी कुछ समय पहले तक अमेरिका के कट्टर दुश्मनों इरान और सीरिया से मदद लेकर आईएस पर नकेल कसने की बातें अमेरिकी रणनीतिक हलकों में अब आम हो गयी हैं। 11 सितम्बर के आतंकवादी हमले की 13 वीं बरसी पर ओबामा ने सीरिया में आईएस के ठिकानों पर हवाई बमबारी एवं इराक में 500 अतिरिक्त सैन्य सलाहकारों को भेजने की घोषणा की। साथ ही सीरियाई विद्रोहियों के नरमपन्थी हिस्सों को हथियारों की सप्लाई एवं सैन्य प्रशिक्षण की योजना का भी खुलासा किया गया।

पिछले चन्द महीनों में पश्चिम एशिया की राजनीति में तेज़ी से हुए इन बदलावों से यह स्पष्ट है कि अमेरिकी साम्राज्यवादी अपने ही बनाये तिलिस्म में ज़्यादा से ज़्यादा फँसते जा रहे हैं। विपक्षी रिपब्लिकन पार्टी ओबामा पर इराक में एक बार फिर से सेना भेजने के लिए दबाव बना रही है। सीरिया में असद सरकार का तख़्ता पलट करने की योजना टालकर अब आईएस के खतरे को निपटना अमेरिकी विदेशी नीति की प्राथमिकता बन गयी है। सीरिया और इरान के साथ ही साथ तुर्की की सरकार एवं अरब के शेख और शाहों की सत्तायें भी आईएस की बढ़ती ताक़त से सकते में आ गये हैं और पारस्परिक सहयोग की बातें सुनने में आ रही हैं। हालाँकि इनमें आपस में ज़बर्दस्त अन्तर्विरोध हैं। तुर्की, सीरिया और इरान को डर है कि अमेरिका द्वारा इराक में कुर्दिस्तान की स्वतन्त्रता देने से इन देशों में रहने वाले कुर्द भी स्वतन्त्रता की माँग उठाने लगेंगे। गौरतलब है कि इराक में लगभग 50 लाख कुर्द रहते हैं जबकि तुर्की में लगभग 2 करोड़ कुर्द रहते हैं। इसी तरह सीरिया और इरान में भी अच्छी-खासी संख्या में कुर्द रहते हैं। अमेरिका ने भले ही इराक में प्रधानमन्त्री बदल दिया है, लेकिन नया प्रधानमन्त्री अल-अबादी की नज़दीकी इरान से भी है और साथ ही साथ इराक के बद्र और सलाम ब्रिगेड जैसे शिया मिलीशिया पर भी इरान का ही नियन्त्रण है। सउदी अरब और तुर्की हालाँकि अल-बग़दादी के खलीफ़ा बनने की घोषणा करने के बाद से आईएस पर नकेल कसने के पक्षधर हैं लेकिन उन्हें यह भी डर है कि इस प्रक्रिया में इरान, इराक और सीरिया में शियाओं की ताक़त और ज़्यादा बढ़ जायेगी। इस जटिल परिस्थिति में इतना तो तय है कि आने वाले दिनों में यह पूरा क्षेत्र भयंकर पन्थीय हिंसा और गृहयुद्धों की चपेट में रहेगा। लेकिन इसी प्रक्रिया में साम्राज्यवादी और उनके पिटूटू निरंकुश अरब शासक भी वहाँ की जनता की निगाहों में ज़्यादा से ज़्यादा नंगे होते जायेंगे। गाज़ा में इज़रायली हमले के दौरान उनके रुख से पहले ही समूचे अरब क्षेत्र की जनता में वहाँ के शासकों के प्रति भारी असन्तोष दिखा। यह असन्तोष भविष्य में व्यापक जनविद्रोहों की शकल अख़्तियार करेगा।



‘पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) क़ानून- 2014’ जनसंघर्षों को कुचलने की नापाक कोशिश

● लखविन्दर

गुज़री 22 जुलाई को पंजाब की विधानसभा में एक बेहद ख़तरनाक काला क़ानून पारित किया गया है। इस काले क़ानून का नाम है - ‘पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) क़ानून- 2104’। यह क़ानून अपने नाम से तो बहुत लुभावना है लेकिन यह मेहनतकश जनता के लिए बेहद ख़तरनाक है। पंजाब सरकार ने जनसंघर्षों को बर्बर ढंग से कुचलने की कोशिशें तेज़ कर दी हैं। यह काला क़ानून इन्हीं नापाक कोशिशों का हिस्सा है। पंजाब सरकार ने सन् 2010 में भी दो काले क़ानून ‘पंजाब सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान (रोकथाम) क़ानून-2010’ व ‘पंजाब विशेष सुरक्षा ग्रुप क़ानून-2010’ बनाये थे। क्रान्तिकारी-जनवादी संगठनों के नेतृत्व में पंजाब की जनता द्वारा लड़े गये जुझारू संघर्ष के दबाव में सन् 2011 में सरकार को दोनों काले क़ानून रद्द करने पड़े थे। उस समय रद्द किए गये पहले क़ानून की तर्ज़ पर अब ‘पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) क़ानून-2104’ बनाया गया है। सरकार ने कुछ आपत्तिजनक धाराएँ हटाने के नाम पर इस क़ानून को ‘जनपक्षधर’ बनाने का नाटक किया है (जैसे रैली, धरना, प्रदर्शन करने के लिए लिखित आज्ञा लेने की शर्त हटा ली गयी है) लेकिन काफी कुछ ऐसा जोड़ दिया गया है कि नया क़ानून पहले वाले से भी अधिक ख़तरनाक हो गया है। अगर यह क़ानून लागू हो जाता है तो पंजाब के क्रान्तिकारी-जनवादी आन्दोलनों को बेहद दमनात्मक परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इस बार सरकार पूरी सख्ती से यह क़ानून लागू करने की तैयारी में दिखायी पड़ रही है। इसलिए लड़ाई भी अधिक सख्त होगी।

यह क़ानून भारत के बेहद ख़तरनाक जनविरोधी काले क़ानूनों में से एक है। इस क़ानून में कहा गया है कि किसी व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह, संगठन, या कोई पार्टी द्वारा की गयी कार्रवाई जैसे “ऐजीटेशन, स्ट्राइक, हड़ताल, धरना, बन्द, प्रदर्शन, मार्च, जुलूस”, रेल या सड़क परिवहन रोकने आदि से अगर सरकारी या निजी जायदाद को कोई नुकसान, घाटा, या तबाही हुई हो तो उस कार्रवाई को नुकसान करने वाली कार्रवाई माना जायेगा। किसी संगठन, यूनियन या पार्टी के एक या अधिक पदाधिकारी जो इस नुकसान करने वाली कार्रवाई को उकसाने, साजिश करने, सलाह देने, या मार्गदर्शन, में शामिल होंगे उन्हें इस नुकसान करने वाली कार्रवाई का प्रबन्धक माना जायेगा। सरकार द्वारा तैय किया गया अधिकारी अपने तय किए गये तरीके से देखेगा कि कितना नुकसान हुआ है। नुकसान की

भरपाई दोषी माने गये व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा अगर नहीं की जाती तो उनकी ज़मीन जब्त की जायेगी। सरकार उपरोक्त जनकार्रवाइयों की वीडियोग्राफी करवायेगी। पहले भी जनकार्रवाइयों की वीडियोग्राफी करवायी जाती रही है लेकिन ऐसा करना ग़ैरक़ानूनी था। अब यह काम क़ानूनी तौर पर जायेगा। इस क़ानून के अन्तर्गत वीडियो को नुकसान होने के सबूत पर पूर्ण मान्यता दी गयी है। यानि अगर कोई और सबूत न भी हो सिर्फ वीडियो के आधार पर ही लोगों को दोषी माना जा सकेगा। अन्य क़ानूनों में वीडियो या तस्वीरों को पूर्ण तो दूर की बात, प्राथमिक सबूत की मान्यता भी हासिल नहीं है। वीडियो के साथ आसानी से छेड़छाड़ की जा सकती है इसलिए वीडियो को इस तरह सबूत का दर्जा दिया जाना बेहद ख़तरनाक बात है।

इस क़ानून के तहत हेडकांस्टेबल स्तर के पुलिस मुलाजिम को गिरफ्तारी करने के अधिकार दे दिये गये हैं और जुर्म ग़ैरज़मानती होगा। तीन साल तक की सज़ा और एक लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है। आगजनी या विस्फोट से नुकसान होने पर एक वर्ष से लेकर पाँच साल तक की क़ैद और तीन लाख रुपए तक का जुर्माना हो सकता है। इस मामले में अदालत किसी विशेष कारण से क़ैद की सज़ा एक वर्ष से कम भी कर सकती है।

‘पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) क़ानून-2014’ के इस ब्यौरे के बाद पाठक इस क़ानून के घोर जनविरोधी फासीवादी चरित्र का एक अन्दाज़ा लगा सकते हैं। आगजनी, तोड़फोड़, विस्फोट आदि जैसी कार्रवाइयों के बारे में यह कहने की ज़रूरत नहीं है कि ऐसी कार्रवाइयाँ सरकार, प्रशासन, पुलिस, राजनीतिक नेता, पूँजीपति आदि जिनके ख़िलाफ़ संघर्ष लड़ा जा रहा होता है खुद ही करवाते हैं और इन कार्रवाइयों का दोष लोगों पर लगा दिया जाता है। अब इस क़ानून के लागू हो जाने से इस नुकसान की भरपाई संघर्ष कर रहे लोगों से ही की जायेगी और साथ ही जेल और जुर्माने की सज़ा भी की जायेगी।

सरकार का यह कहना एकदम झूठ है कि यह क़ानून अगजनी, तोड़फोड़, रेल व सड़क यातायात आदि रोकने से होने वाले नुकसान को रोकने के लिए है। इसका प्रत्यक्ष सबूत यह भी है कि जहाँ इस क़ानून में ‘स्ट्राइक, हड़ताल’ को नुकसान करने वाले कार्रवाई में शामिल किया गया है वहीं नुकसान को परिभाषित करते हुए ‘घाटे’ को भी नुकसान में

गिना गया है। यानि अब अगर मजदूर श्रम क़ानून लागू करवाने के लिए, वेतन वृद्धि या अन्य सुविधाओं के लिए, मालिक, पुलिस-प्रशासन, सरकार की गुण्डागर्दी के खिलाफ़, महँगाई के विरुद्ध या अन्य किसी मुद्दे पर हड़ताल करते हैं तो हड़ताली मजदूरों और उनके नेता, हड़ताल में साथ देने वाले अन्य लोग, आदि इस क़ानून के मुताबिक़ यकीनन तौर पर दोषी माने जायेंगे। हड़ताल होगी तो 'घाटा' तो पड़ेगा ही। इस तरह पंजाब सरकार हड़ताल करने को अप्रत्यक्ष ढंग से क़ैद और जुर्माने योग्य अपराध ऐलान कर चुकी है। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का हड़ताल का रूप मजदूरों के लिए एक अति महत्वपूर्ण हथियार है। देश की उच्च अदालतें पहले ही हड़ताल के अधिकार पर हमला बोल चुकी हैं। 6 अगस्त, 2003 के एक फैसले में भारत की सर्वोच्च अदालत ने सरकारी मुलाजिमों द्वारा हड़ताल को ग़ैरक़ानूनी करार दिया था। पंजाब सरकार इससे भी आगे बढ़कर सरकारी व निजी क्षेत्र में हड़ताल करने वालों, इसके लिए प्रेरित करने वालों, मार्गदर्शन करने वालों आदि के लिए सख्त सज़ाएँ लेकर आयी है। इस काले क़ानून का यह पहलू भी इसकी स्पष्ट गवाही है कि सरकार का मकसद मजदूरों व अन्य मेहनतकश लोगों के संघर्षों को कुचलना है।

यह क़ानून कितना ख़तरनाक है इसका अन्दाज़ा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि 'नुक़सानदेह कार्रवाई' के आयोजन में मदद करने के बहाने से टेण्ट वालों, लाऊड स्पीकर वालों, पानी के टैंकर देने वालों, प्रचार सामग्री छापकर देने वालों आदि को भी आसानी से दोषी करार दिया जा सकेगा। अगर एक-दो बार इनमें से किसी को इस क़ानून में घसीटा गया तो संघर्षों के लिए इन चीज़ों की व्यवस्था करनी बहुत मुश्किल हो जायेगी। इससे रैली, धरना, प्रदर्शन, जुलूस आदि जनकारवाइयाँ आयोजित करने में बड़ी मुश्किल खड़ी हो जायेगी।

पूँजीवादी सरकारें काले क़ानून शान्ति व्यवस्था कायम रखने, सुप्रशासन, आम लोगों के जान-माल की सुरक्षा जैसे बहानों से बनाया करती हैं लेकिन इनका वास्तविक मकसद पूँजीपति वर्ग के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक हितों की सुरक्षा व मेहनतकश जनता के हितों को कुचलना होता है। पंजाब सरकार द्वारा पारित इस दमनकारी क़ानून से इस बात का अन्दाज़ा आसानी से लगाया जा सकता है कि देश के हुक्मरान आने वाले दिनों से कितने भयभीत हैं। व्यापक जनाक्रोश, जनान्दोलनों का भय! पूँजीवादी व्यवस्था जनता की हालत दिन-ब-दिन अधिक से अधिक बिगाड़ती जा रही है। वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण की नयी आर्थिक नीतियाँ लागू होने से लोगों की हालत पहले से भी बहुत ज़्यादा गिरी है। मजदूरों-मेहनतकशों को जो कुछ अधिकार, सहूलियतें हासिल थीं भी, वे भी इन नीतियों के तहत बड़े स्तर पर छीन ली गयी हैं, और यह हमला लगातार जारी है। मजदूरों के श्रम अधिकारों पर बड़े स्तर पर हमला हुआ है। रिहायश, भोजन, इलाज, शिक्षा आदि बुनियादी ज़रूरतों से सम्बन्धित कुछ हद तक हासिल अधिकारों से भी जनता लगातार वंचित होती गयी है। अमीरी और ग़रीबी

की खाई लगातार और चौड़ी व गहरी होती गयी है। बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ी है। पूँजीपति हुक्मरान जानते हैं कि जनता में रोष इतना अधिक बढ़ चुका है कि कभी भी ज्वालामुखी की तरह फट सकता है। हुक्मरान सबसे अधिक डरते हैं इस गुस्से को संगठित रूप मिलने से। इसे क्रान्तिकारी दिशा मिलने से। कोई और समझे न समझे लेकिन पूँजीपति हुक्मरान यह अच्छी तरह जानते हैं कि आज जो हालात बने हैं वे जनवादी और क्रान्तिकारी प्रचार, संगठन, जनान्दोलनों व क्रान्तिकारी बदलाव के लिए कितने उपजाऊ हैं।

आज़ाद भारत की राज्यसत्ता - जो अपने जन्म से ही बेहद सीमित जनवादी चरित्र वाली, ज़ालिम व दमनकारी थी - का चरित्र निरन्तर अधिक से अधिक जनविरोधी होता आया है। आज़ाद भारत में असंख्य जलियाँवाला काण्ड हुए हैं, जनता को यहाँ भी खूँखार जनरल डायरों का सामना करना पड़ा है। देश के शहरों में, गाँवों व आदिवासी इलाकों में मेहनतकश जनता के खिलाफ़ पूँजीपति वर्ग निरन्तर एक जंग छेड़े हुए है। आज़ादी से पहले कांग्रेस पार्टी ने वादा किया था कि राष्ट्रीयताओं को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जायेगा। आज़ादी के बाद यह इस वायदे से भाग खड़ी हुई। आज तक कश्मीर और उत्तर-पूर्व की राष्ट्रीयताएँ भारतीय राज्यसत्ता के खिलाफ़ आज़ादी की लड़ाई लड़ती रही हैं। इन राष्ट्रीयताओं को भारतीय राज्यसत्ता दमन-जुल्म के हर रूप से कुचलने की कोशिश करती रही है।

देशद्रोह, आपातकाल लगाने जैसे क़ानूनों से लैस भारतीय संविधान अपने जन्म से ही एक दमनकारी संविधान है। इसे निरन्तर काले क़ानूनों से "समृद्ध" किया जाता रहा है। टाडा, पोटा, यू.ए.पी.ए., ए.एफ़.एस.पी.ए., छत्तीसगढ़ विशेष सुरक्षा क़ानून तो ऐसे क़ानूनों की सिर्फ़ कुछ मिसालें हैं। विचार व्यक्त करने, विरोध और संघर्ष करने की आज़ादी जैसे जनवादी अधिकारों का दायरा जो पहले ही बहुत संकीर्ण था, और भी संकीर्ण किया जाता रहा है। लोगों को विचार व्यक्त करने पर आतंकवादी कह कर जेलों में ठूँसा जाता रहा है और यह जारी है। भारत में राँ, आई.बी., एन.आई.ए., सी.बी.आई., डी.आई.ए., जे.सी.आई., एन.टी.आर.ओ. समेत एक दर्जन से अधिक केन्द्रीय खुफिया एजेंसियाँ हैं। हर राज्य में खुफिया विभाग और विशेष पुलिस, आतंकवाद विरोधी दस्ते (ए.टी.एस.) आदि आधुनिक दमनकारी औज़ारों से लैस विशाल ढाँचा है। लेकिन भारत की पूँजीवादी हुक्मरान इसे नाकाफ़ी मान रहे हैं। जनाधिकारों की आवाज़ कुचलने के लिए इस दमनकारी ढाँचे को आतंकवाद से लड़ने के नाम पर अधिक दमनकारी बनाया जा रहा है। दो वर्ष पहले केन्द्र सरकार एन.सी.टी.सी. नाम की एक बेहद दमनकारी खुफिया एजेंसी का गठन करने जा रही थी। उस समय सरकार को हुक्मरान वर्ग के अन्तर्विरोधों के चलते अपने क़दम पीछे हटाने पड़े थे लेकिन यह तय है कि सरकार उस या उस जैसी एजेन्सी का गठन फिर से करेगी। पंजाब सरकार सन् 2010 में जो 'पंजाब विशेष सुरक्षा क़ानून-2010' लेकर आयी थी वह ए.एफ़.एस.पी.ए. से भी ख़तरनाक था। यह क़ानून उस समय तो व्यापक जनसंघर्ष के दबाव में रद्द कर दिया गया

था लेकिन यह भी यकीनन कहा जा सकता है कि यह क़ानून भी नजदीक भविष्य में उसी या किसी अन्य रूप में लाया जायेगा। दमनकारी ढाँचे को और दमनकारी बनाना हुक्मरानों के लुटेरे हितों की न टालने योग्य ज़रूरत है।

आज जब विश्व पूँजीवादी व्यवस्था गहरे आर्थिक संकट का शिकार है। पूरी दुनिया में जनता के जनवादी अधिकारों पर हमला तेज़ हो गया है। यूरोप में कम्युनिस्ट विचारों पर पाबन्दी लगाने की तैयारियों की खबरें आ रही हैं। भारत का पूँजीवादी ढाँचा विश्व पूँजीवादी ढाँचे के साथ नाभिनालबद्ध है और खुद भी गहरे आर्थिक संकट का शिकार है। आर्थिक संकट का सारा बोझ मजदूरों-मेहनतकशों पर डाला जा रहा है। जन विरोध को कुचलने के लिए लोगों को हासिल जनवादी-संवैधानिक अधिकारों कुचलने की साजिशें हो रही हैं। ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, महँगाई के सताये मजदूरों-मेहनतकश लोगों को लूट, शोषण, दमन के खिलाफ़ एकजुट होकर अपने आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक अधिकारों के लिए लड़ने से रोकने के लिए काले क़ानूनों में वृद्धि हो रही है। पंजाब सरकार का यह काला क़ानून भी इन हालातों की पैदायश है।

केन्द्र में मोदी सरकार आने से जनता पर पूँजीपति वर्ग का हमला और तेज़ हो गया है। श्रम अधिकारों पर हमला तेज़ हुआ है। महँगाई तेज़ी से बढ़ी है। करों का बोझ लोगों पर और भी अधिक लाद दिया गया है। इन हालात में 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुकसान रोकथाम) क़ानून' जैसे भयानक काले क़ानूनों के बिना हाकिमों का लूट-दमन का बुलडोज़र और आगे नहीं बढ़ सकता। आने वाले दिनों में अन्य राज्यों और केन्द्र में ऐसा क़ानून बनना कोई हैरानी की बात नहीं होगी।

लेकिन हाकिमों को किसी भी सूरत में जनान्दोलनों से पीछा छुड़ाने में दमनकारी काले क़ानूनों से कोई मदद नहीं मिल सकेगी। यह क़ानून जनता की राह थोड़ी मुश्किल ज़रूर बना सकते हैं लेकिन रोक नहीं सकते। इतिहास जनता के गौरवशाली संघर्षों के असंख्य उदाहरणों से भरा पड़ा है। जनता पहले भी बर्बर राजे-रजवाड़ों, सामन्तों, दमनकारी पूँजीवादी हाकिमों, उपनिवेशवादियों, खूँखार साम्राज्यावादियों के अजेय दिखायी पड़ने वाले किलों को मिट्टी में मिलाती रही है और आगे भी ऐसा ही होगा। इतिहास की इस गति को कोई नहीं रोक सकता। दमनकारी काले क़ानून, जेल, दमन क्या दुनिया की किसी भी ताक़त से जनता के हक, सच, ईसाफ़ के लिए संघर्ष हमेशा के लिए कुचला नहीं जा सकता। पंजाब की जुझारू जनता दमनकारी हाकिमों के खिलाफ़ डटकर लड़ई लड़ेगी और हाकिमों को थूक कर चाटने के लिए मजबूर करेंगी। पंजाब की जुझारू जनता अपने अन्य आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक मुद्दों पर एकजुट संघर्ष के दौरान राज्य सरकार के नए काले क़ानून को न सिर्फ़ पैरों तले मसलकर रख देगी बल्कि इस क़ानून के खिलाफ़ व्यापक जनान्दोलन खड़ा करके इसे ख़त्म करवाकर ही दम लेगी। आज जो हालात बन चुके हैं उनमें लड़ना जीने की शर्त बन चुका है। पंजाब की जुझारू जनता इस शर्त को ज़रूर पूरा करेगी। ●

गाज़ा में इज़रायल की हार और आगे की सम्भावनाएँ

(पृष्ठ 14 से आगे)

की समझौतापरस्त हुक्ूमत की भी एक हार है। हमास और पी.एल.ओ. की प्रस्तावित 'एकता सरकार' महमूद अब्बास की एक मजबूरी है, जो अब गले की हड्डी बन चुकी है। इसका आने वालों दिनों में क्या हश्र होगा, यह तो अभी बता पाना मुश्किल है, लेकिन इतना तय है कि गाज़ा पट्टी के साथ ही पश्चिमी तट पर भी व्यापक जन-प्रतिरोध की लहर तेज़ हो जायेगी और तीसरे इन्तिफ़ादा जैसे किसी व्यापक जनउभार की सम्भावना से क़तई इन्कार नहीं किया जा सकता। फ़िलिस्तीनी जनता के संघर्ष का अगला दौर समूचे अरब क्षेत्र में जनसंघर्षों को नया संवेग प्रदान करेगा और इसका प्रभाव पूरी दुनिया पर पड़ेगा, क्योंकि समूचा पश्चिम एशिया आज विश्व पूँजीवाद के सभी अन्तरविरोधों की गाँठ बना हुआ है। गाज़ा के समर्थन में पिछले दिनों पूरी दुनिया में जितने बड़े पैमाने पर जन-प्रदर्शन हुए, वह नज़ारा दशकों बाद देखने में आया। वियतनाम युद्ध के दिनों के बाद पहली बार पूरी दुनिया की जनता की एकजुटता इस तरह सड़कों पर दिखायी दी।

फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष के पूरे इतिहास पर यदि सरसरी निगाह डालें तो पहले अरब-इज़रायल युद्ध (1947-49), दूसरे अरब-इज़रायल युद्ध (1967), पी.एल.ओ. के गठन, पहले इन्तिफ़ादा (1987), दूसरे इन्तिफ़ादा (2000) और लेबनान में हिज़बुल्लाह के हाथों इज़रायल की हार (2006) के बाद 2014 का गाज़ा संघर्ष सातवाँ महत्वपूर्ण मुकाम है जहाँ से एक नया अध्याय शुरू होने जा रहा है।

निश्चय ही फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष की निर्णायक विजय का रास्ता अभी लम्बा और कठिनाइयों भरा है। किसी हद तक फ़िलिस्तीनी जनता का भविष्य समूचे अरब क्षेत्र में जन मुक्ति संघर्ष के आगे बढ़ने के भविष्य के साथ भी जुड़ा है। आने वाले दिनों में अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतियोगिता के नये दौर के गति पकड़ने का भी इस पर अनुकूल सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। मुक्ति की मंज़िल अभी दूर है, पर इतना सिद्ध हो चुका है कि असीम सामरिक शक्ति के बूते भी एक छोटे से देश की जनता को गुलाम बनाकर रख पाना मुमकिन नहीं। जनता अजेय होती है। आने वाले दिनों में भी फ़िलिस्तीन में जायनवादी जुल्म और अंधेरगर्दी जारी रहेगी, लेकिन इतना तय है कि हर अत्याचार का जवाब फ़िलिस्तीनी जनता ज़्यादा से ज़्यादा जुझारू प्रतिरोध द्वारा देगी। जायनवादियों को आने वाले दिनों में कुछ महत्वपूर्ण रियायतें देने के लिए भी मजबूर होना पड़ सकता है। और देर से ही सही, फ़िलिस्तीनी जन जब निर्णायक विजय की मंज़िल के करीब होंगे तो उनके तमाम अरब बन्धु भी तब मुक्ति संघर्ष के पथ पर आगे क़दम बढ़ा चुके रहेंगे। ●

भगतसिंह के लिए एक गद्यात्मक सम्बोध-गीति

कात्यायनी

संजीवनी पहचानने के बजाय पूरा पर्वत उठा लाना हमारी पुराण परम्परा है
और ऐसे देश में इतिहास से कुछ भी सीखने की कोशिश
एक जोखिम भरी यात्रा होती है।
इतिहासग्रस्त लोग कभी नहीं सीख पाते इतिहास से।
इतिहास-विच्छिन्न लोगों को समझना होता है जीवन और
सृजन और स्वप्नों और प्रयोगों की
आन्तरिक गतिकी को और अपने अतीत का पुनराविष्कार करना होता है।
'इतिहास वर्तमान से अतीत का निरन्तर जारी संवाद है' (ई.एच. कार)
यह एक बहुत पुराना देश है पुरातनता के नशे में जीता हुआ,
पर भीतर ही भीतर आधुनिकता
की चकाचौंध से सम्मोहित, विगत गौरव का मिथ्याभास है
जिसका जीवन-सम्बल।
यहाँ बहुत अधिक होती है जड़ों और स्मृतियों और इतिहास और परम्परा तक
जाने की बातें और यह द्रविण प्राणायाम बचाता है भारत के सुधीजनों को
इस शर्मिन्दगी भरे अहसास से कि वे भविष्य के साथ मुलाकात का वक्त
तय करने का काम टाल चुके हैं अनिश्चितकाल के लिए।
इतिहास यहाँ आँधी में उखड़े पेड़ की आँधी जड़ें हैं
या फिर पराजितमना लोगों का अन्तिम शरण्य,
या नियति से एक छलपूर्ण करार
या वहशी फासिस्ट जनसंहारकों और मानवमूल्य आखेटक
बर्बरों का शस्त्रागार।
एक ऐसी शताब्दी में, जब हत्या या लूट या नरसंहार या
इराक़ फ़िलिस्तीन आदि
वस्तुगत यथार्थ नहीं, महज् पाठ है और भाषा है विचारों का कारागृह,
भारत की एक स्त्री, एक स्त्री कवि, सचमुच तुम्हे याद करना चाहती है भगतसिंह,
एक मशक्कती ज़िन्दगी की तमाम जद्दोजहद और
उम्मीदों और नाउम्मीदियों के बीच,
अपने अन्दर की गीली मिट्टी से आँसुओं, खून और
पसीने के रसायनों को अलगाती हुई,
जन्मशताब्दी समारोहों के घृणित पाखण्डी अनुष्ठानों के बीच,
सम्बोध-गीति के अतिशय गद्यात्मक हो जाने का जोखिम उठाते हुए
लेकिन तर्कणा-निषेधी रोमानी भावुकता से यथासम्भव बचती हुई

और सबसे पहले, सबसे पहले, पूछना चाहती है
कविता की दुनिया से बहिष्कृत
शब्दों को निस्संकोच इस्तेमाल करते हुए यह सवाल कि
किस प्रकार, किस प्रकार
तेज़ की जाती है क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर,
किस तरह से विचार-जनसाधारण के व्यवहार में रूपान्तरित होकर
प्रचण्ड भौतिक शक्ति
बन जाते हैं और किस प्रकार दुनिया को बदलते हुए लोग
स्वयं को बदल लेते हैं।
इन सवालों को पूछने के लिए कविता के भीतर
तोड़नी पड़ रही है कविता की शर्तें
और मैं नहीं हूँ क्षमाप्रार्थी सांस्कृतिक दिग्पालों-देवों-गन्धर्वों-यक्षों के समक्ष
क्योंकि ये सवाल एक ऐसे समय में पूछे जा रहे हैं
क्षितिज पर प्रज्वलित एक मशाल से
जब वामपन्थी कविता ने सुगढ़ शलीनता के साथ सीख लिया है,
कुलीन कलावन्तों का
मन मोहने का हुनर और विचार राजकीय मान्यता प्राप्त
वेश्यालयों में प्रवेश दिलाने
वाले पारपत्र बन चुके हैं राजधानियों में।
इस देश में इस नयी सदी की पहली दहाई में पैदा होने वाले
शान्तिप्रिय लोग
सिर्फ ईश्वर को आवाज दे सकते हैं,
या हर रोज़ की दिनचर्या यूँ जीते हुए
पाये जा सकते हैं मानों किसी शवयात्रा में शामिल हों
या उदास घण्टियों के जुलूस में या फिर वे किसी एन.जी.ओ. या
सिविल सोसायटी संगठन में
शामिल होकर अपने सामाजिक सरोकारों-चिन्ताओं के हिसाब से कुछ करने,
लोगों का थोड़ा-सा दुःख हरने या इस कठिन समय में बिताते हुए
शापग्रस्त जीवन दूरगामी
बदलाव के लिए थोड़ी-सी जमीन तैयार करने के भ्रम में जीते हुए
बन जाते हैं हत्यारे हाथों के श्वेत-धवल दस्ताने।
और फिर भी मैं इस देश के तमाम व्यग्र-विद्रोही-अपराजित
पथान्वेषी आत्माओं की ओर से
तुमसे बात करना चाहती हूँ भगतसिंह, क्योंकि तुम यहीं जन्मे थे
और उन कारणों को समझा था,
जिनके चलते एक अभागे गुलाम देश को
प्यार किया जा सकता है वास्तव में और
उसके भविष्य के लिए सहर्ष-सगर्व
अपने जीवन, अपने निजी सपनों और
आकांक्षाओं को होम किया जा सकता है।
एक शताब्दी पहले एक गुलाम देश में जन्म लेकर
तुमने इससे बेइन्तहा प्यार किया,
इस अनूठे देश के स्वप्नों-सम्भावनाओं में विश्वास किया अटूट।
तुमसे बात करना चाहती हूँ मैं, क्योंकि मैं भी मानती हूँ
यह असम्भव-सी लगती बात

कि राख के अम्बार के भीतर अभी भी गर्म होगा
इस पुरातन देश का युवा हृदय
और जिन उजरती गुलामों की हड्डियों का चूरा बनाया जाता है
बाज़ार में बेचे जाने के लिए, उनके लिए मुक्ति के बारे में
सोचना अब भी महज़
एक सम्भावना नहीं, बल्कि एक थरथराता हुआ, निरुपाय,
विवश यथार्थ है
और जीवित रहने की एक शर्त।
उनके लिए यह एक ऐसी क्रिया नहीं है जिसका उल्लेख-मात्र
आज के वामपन्थी कवियों की
कविता को या तो बासी बना देता है या फिर महज़ राजनीतिक बयानबाजी
ऐसे लोग हैं, भगतसिंह, अब भी इस देश में जो अपने जीवित
उष्ण हृदय के साथ
और सक्रिय विवेक के साथ तुम्हारी भावनाओं और
तुम्हारे विचारों तक पहुँचना चाहते हैं,
तुमसे संवाद करना चाहते हैं क्योंकि भूमण्डलीकरण की
इस शताब्दी में भी
वे इस देश को प्यार करते हैं एक खास चौहद्दी वाले
भूभाग के रूप में नहीं
और न ही उन लोगों की तरह जिनका राष्ट्रवाद मण्डी में जन्मा है,
उनकी तरह भी नहीं जो देश को किसी नस्ल या धर्म से जोड़ते और
'सारे जहाँ से अच्छा' घोषित करते हैं।
वे इस देश को प्यार करते हैं तो यहाँ के उन लोगों को प्यार करते हैं
जिन्होंने इस देश को बनाया है, इसे प्यार, सौन्दर्य और कल्पना के स्थापत्य में
ढाला है अपना हुनर और अपनी कल्पनाशील सर्जना के द्वारा
और जिन्हें छला गया है और लूटा गया है
और जिसके स्वप्न अपहृत करके
निर्यात कर दिये गये हैं रहस्यमय, अज्ञात, बर्बर महादेशों को
और जिनसे छीनकर उनकी स्मृतियाँ, दे दिये गये हैं कुछ मिथ्याभास
और फिर भविष्य-स्वप्नों की जगह रखकर स्मृतियों को,
उन्हें ही बना दिया गया है निर्विकल्प अन्तिम शरण्य।

भगतसिंह! मार्क्स-एंगेल्स, लेनिन और माओ से सीखते हुए
हमारी पीढ़ी के अपराजितों ने ही वास्तव में
किया तुम्हारा पुनरावेषण और तुम्हारी स्मृति से प्रेरणा और
विचारों से दिशा लेकर
भविष्य की कविता लिखने की कोशिशों में जुटे,
जो अधकचरी-अधबनी रही
हर नये कवि के आरम्भिक कृतित्व की तरह।
अब उसे पीछे छोड़ जब हम फिर ढूँढ़ रहे हैं भविष्य की कविता
के लिए अधिक सम्पदा का कच्चा माल
और भाषा और शिल्प, तो एक बार फिर नये सिरे से तुमसे
संवाद कायम करना चाहते हैं
जिसने बताया था कि लंगर छिछले पानी में नहीं डाला करते

महासमुद्रों के खोजी यात्री।

अब भी मैं शामिल हूँ उन लोगों में जिनका यह दृढ़ विश्वास है

कि इस विस्तीर्ण हिमनद जैसे देश-काल में भी मौजूद है

बेचैन आत्मा और गर्म हृदय वाले

ऐसे युवा जो भाषाई तिलिस्मों से बाहर आकर नयी सच्चाइयों की

पड़ताल के लिए तत्पर हैं, जो न पुरानी क्रान्तियों के परिधान पहनकर

नया नाटक मंचित करना चाहते हैं, न ही अतीत की विफलताओं,

पराजयों, विश्वासघातों से

उद्विग्न होकर, आतंक के सहारे सत्ता ध्वंस करने का

मुगालता पालते हैं,

जो अभी भी तुम्हारी सलाह मान फ़ैक्टरियों और

खेतों के मेहनतकशों तक जाना चाहते हैं

संघर्ष और सृजन की नयी परियोजनाओं के साथ और

जीने के तरीके को बदलना ही जिनके जीने का तरीका है।

मात्सिनी की जो पंक्तियाँ तुम्हें प्रिय थीं,

उसी तरह सोचने का समय है यह

कि मत करो प्रतीक्षा किसी नायक की, आम लोग बनाते हैं एक नयी दुनिया

और फिर इतिहास चुनता है अग्रणी सेनाओं में से कुछ नाम

जो प्रतीक चिन्ह बन जाते हैं।

ब्रेष्ट की ही तरह ही सोचा तुमने भी कि अभागा वह देश नहीं होता

जिसका कोई नायक नहीं होता,

बल्कि वह होता है जो नायक की प्रतीक्षा करता है

और आज भी जो सोचते हैं इस तरह, वही इस देश के आम लोगों को प्यार करते हैं

इसके भविष्य में विश्वास रखते हैं

और विचारों को दफन करके मूर्तियाँ लगाने के बजाय तुमसे

संवाद करना चाहते हैं।

इसलिए भगतसिंह, जितनी कुल उम्र जिये थे तुम,

उसके आस-पास खड़े लोगों से कह दो यह बात दो-टूक कि

लूट और दमन द्वारा नहीं, युद्ध और बमवर्षा द्वारा नहीं,

सौम्य शान्ति, अपार सहनशीलता, सुभाषितों-आप्तवचनों,

गड़रिये जैसे सहज विश्वास,

समझौतों, वायदों और आश्वासनों के हाथों तबाह हुआ है यह देश।

हमारी आत्माओं में रिस रहा है यह अहसास बूँद-बूँद रक्त की तरह

कि जिस युद्ध के जारी रहने की तुमने भविष्यवाणी की थी,

उसके प्रति सजग नहीं रहे

हमारे अग्रज और ठगे गये, पराजित हुए या विपथगामी बने।

एक बार फिर कान देना होगा उस आवाज पर जो आ रही है

पूर्वजों के अरण्य से, पचहत्तर वर्षों से भी अधिक लम्बे अन्तराल को पारकर

और हमें सहसा याद आती है वाल्ट व्हिटमैन की वे पंक्तियाँ जो दर्ज

की थी तुमने अपनी जेल नोटबुक में :

दफन न होते आज़ादी पर मरने वाले

पैदा करते हैं मुक्ति बीज, फिर और बीज पैदा करने को

जिसे ले जाती दूर हवा और फिर बोती है और जिसे

पोषित करते हैं वर्षाजल और हिम।

देह मुक्त जो हुई आत्मा उसे न कर सके विच्छिन्न

अस्त्र-शस्त्र अत्याचारी के
बल्कि हो अजेय रमती धरती पर, मरमर करती,
बतियाती, चौकस करती।

●
वहाँ अपने प्रवास के दिनों में मैंने जो कुछ देखा, उसके लिए मैं
तैयार नहीं था। उस अपरिचित महाद्वीप की भावना ने हालाँकि मुझे
अभिभूत कर दिया लेकिन वहाँ मेरी ज़िन्दगी इतनी लम्बी और अकेली
थी कि मैं भयंकर निराशा में रहा। कभी ऐसा लगता जैसे मैं किसी
अन्तहीन रंग-बिरंगी तस्वीर में फँस गया हूँ : एक अदभुत फ़िल्म
में, जहाँ से बाहर नहीं आया जा सकता। भारत में मुझे कभी उस
रहस्यमयता का अनुभव नहीं हुआ जिसने कितने ही दक्षिण
अमेरिकियों और दूसरे विदेशियों को राह दिखायी है। जो लोग अपनी
चिन्ताओं के किसी धार्मिक समाधान की खोज में भारत जाते हैं वे
चीजों को और ही तरह से देखते हैं। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मुझे
पर समाजशास्त्रीय परिस्थितियों का गहरा असर हुआ — विशाल
निश्शस्त्र राष्ट्र, बेहद सुरक्षाहीन, अपने शाही जुवे में जकड़ा हुआ।
यहाँ तक कि अंग्रेजी संस्कृति भी, जिससे मुझे ख़ासा अनुराग था,
वहाँ घिनौनी लगी, क्योंकि उसने उस समय के कितने ही हिन्दुओं
को बौद्धिक गुलामी के लिए विवश कर दिया था।
(पाब्लो नेरूदा : एक साक्षात्कार में भारत प्रवास के बारे में)

आज भी निश्शस्त्र है इस विशाल देश की एक अरब आबादी
परिवर्तन की दिशा की समझ, भविष्य स्वप्नों और
सेनानियों की हरावल पंक्ति के बिना,
भाषा जितनी पंगु है और विचार मानसिक उपनिवेश के शिकार,
विकास-दर के शाही जुए में जकड़े हुए बौद्धिक जहाँ
महाशक्ति बनने की मृग-मरीचिका के पीछे भाग रहे हैं
और चौरासी करोड़ लोगों का जीवन जहाँ मृतकों के कारागार में
घुट रहा है,
जहाँ सुरक्षित भविष्य वाले युवा पीले बीमार चेहरों को
गर्व से दिखला रहे हैं
अपनी आत्मा यह बताते हुए कि यह इम्पोर्टेड है
और संचार के नये माध्यमों के सहारे अपना वर्चस्व मजबूत बना रही हैं
पुरानी बेवकूफ़ियाँ तर्कणा को चाटती हुई टिड्डी दलों की तरह।
कविता की दुनिया में भयंकर संकट पर गहन विचार-विमर्श कर रहे हैं
दुर्दान्त विद्वत्जन इण्डिया इण्टरनेशनल सेण्टर में जारी संगोष्ठी में
और नन्दीग्राम में सत्ता का ताण्डव और नन्दन में
फ़िल्म समारोह चल रहा है।
दुनिया के सबसे धनी सौ लोगों में शामिल हो चुके हैं
इस देश के कई धनी
और दुनिया की सबसे सुन्दर स्त्रियों में इस देश की कई स्त्रियाँ।
जी.डी.पी. की विकास दर में यह देश ऊपर से दूसरे नम्बर पर है,
इसलिए राष्ट्रीय गौरव के साथ जीने का आदेश दे दिया गया है
बीस रुपया रोज़ाना की कमाई पर जीने वाले चौरासी करोड़ लोगों को

बीस करोड़ बेरोज़गारों को और छब्बीस करोड़
आधा पेट खाने वाले लोगों को।
निर्देश है कि स्त्रियों को जलाये जाने से पहले, किसानों को
आत्महत्या करने के पहले, गाँव के ग़रीबों, बाँध क्षेत्रों के विस्थापितों
और जंगल-पहाड़ के लोगों को दर-बदर होने से पहले
और शहर के फुटपार्थों पर सो रहे लोगों को कुचल दिये जाने से पहले
कम-से-कम एक बार राष्ट्रीय गौरव का स्वाद चखना होगा
और संविधान, न्यायपालिका और तिरंगे की अवमानना
किसी भी हालत में नहीं करनी होगी
और नित्यप्रति रामदेव का प्रवचन सुनना होगा और प्राणायाम करना होगा
संविधान, जिसे इस देश के पन्द्रह प्रतिशत महामहिमों के प्रतिनिधियों ने
पारित किया था सत्तावन वर्षों पहले दुनिया के सबसे पवित्र-पावन
सम्पत्ति के अधिकार की सुरक्षा की गारण्टी के साथ
और न्यायपालिका जिसे घुसाती रही उजरती गुलामों के
दिमागों में हथौड़े मार-मारकर।
तिरंगा, जिसे मेजों पर गाड़कर दुनिया के सबसे व्यभिचारी
और अत्याचारी समझौते किये जाते रहे।
अगर भूगोल की चौहदियों से अलग एक देश की परिभाषा में
कहीं शामिल है ज़िन्दगी की बुनियादी ज़रूरत की चीजें
उपजाने-बनाने वाले लोग भी
तो सचमुच यह देश आज कितना अरक्षित है और किस कदर जकड़ा है
प्रगति और गौरव के आत्मसम्मोहनकारी मिथ्याभासों में।



जब गतिरोध की स्थिति लोगों को अपने शिकंजे में जकड़ लेती है
तो किसी भी प्रकार की तब्दीली से वे हिचकिचाते हैं। इस जड़ता और
निष्क्रियता को तोड़ने के लिए एक क्रान्तिकारी स्पिरिट पैदा करने की
ज़रूरत होती है, अन्यथा पतन और बरबादी का वातावरण छा जाता
है। लोगों को गुमराह करने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ जनता को
ग़लत रास्ते पर ले जाने में सफल हो जाती हैं। इससे इंसान की
प्रगति रुक जाती है और उसमें गतिरोध आ जाता है। इस परिस्थिति
को बदलने के लिए यह ज़रूरी है कि क्रान्ति की स्पिरिट ताज़ा की
जाये, ताकि इंसानियत की रूह में हरकत पैदा हो। (भगतसिंह)

सबसे ख़तरनाक वह गतिरोध होता है जो गतिमानता का आभास देता है।
सबसे कठिन तब होती है एक नयी शुरुआत जब सुधी कलावन्त
जीवन की असह्य यन्त्रणाओं से गढ़ते हैं अत्यन्त सुन्दर काव्य-रूपक और बिम्ब
और विज्ञान उनका विश्लेषण करते हैं और सत्ता
उन्हें पुरस्कृत करती है।
सबसे दुष्कर उस भ्रम को तोड़ना होता है जो आम लोगों को सुखी लोगों के
सपने दिखाता है और बीच में खड़े लोगों को
ऊपर के लोगों के साथ तदनुभूति के पाठ पढ़ाता है।
सबसे ख़तरनाक वह अँधेरा होता है जो कालिख की तरह
स्मृतियों पर छा जाता है
और इतिहास की मान्य पहचानों के बारे में विभ्रम पैदा कर देता है।

सबसे ख़तरनाक वह हमला होता है जब हमलावर
कहीं बाहर से नहीं आये होते हैं
बल्कि हमारे बीच से ही गिरोहबन्दी होती है सर्वाधिक मानवद्रोही आत्मा

और अपने आसपास की अल्पसंख्यक आबादी को 'अन्य' और
बाहरी घोषित कर देती है,
उनकी बस्तियों को जलाकर राख कर देती हैं
और बलात्कार और नरसंहार का ताण्डव रचती हैं
और इन सबके विरोध में राजधानी की किसी सुरक्षित रौशन सड़क पर
सिर्फ कुछ मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं।
अँधेरा तब सबसे अधिक गहरा होता है
किसी आतताई आक्रान्ता की तरह
हमारे मानवीय विवेक को रौंदता-कुचलता, क्षत-विक्षत करता हुआ।
लेकिन यही अँधेरा हमें उकसाता भी है,
चुनौती देता है, ललकारता है
कि क्रान्ति की स्पिरिट पैदा की जाये इंसानियत की रूह में
हरकत पैदा करने के लिए
और तब, भगतसिंह, बेहद ईमानदारी, बेचैनी और शिद्दत के साथ
हम तुम्हें याद करते हैं और गहन जिजिविषा और
युयुत्सा के साथ
सोचते हैं अपने समय के बारे में ठीक उसी तरह
जैसा लेनिन की एकमात्र कविता की ये पंक्तियाँ बताती हैं
प्रतिक्रिया के अँधेरे समय के बारे में :

पैरों से रौंदे गये आज़ादी के फूल
आज नष्ट हो गये हैं
अँधेरे के स्वामी
रौशनी की दुनिया का खौफ देख खुश हैं
मगर उस फूल के फल ने
पनाह ली है जन्म देने वाली मिट्टी में,
माँ के गर्भ में,
आँखों से ओझल गहरे रहस्य में
विचित्र उस कण ने अपने को जिला रखा है
मिट्टी उसे ताक़त देगी, मिट्टी उसे गर्मी देगी
उगेगा वह एक नया जन्म लेकर
एक नयी आज़ादी का बीज वह लायेगा
फाड़ डालेगा बर्फ़ की चादर वह विशाल वृक्ष
लाल पत्तों को फैलाकर वह उठेगा
दुनिया को रौशन करेगा
सारी दुनिया को, जनता को
अपनी छाँह में इकट्ठा करेगा।

प्रथम विश्वयुद्ध के साम्राज्यवादी नरसंहार के सौ वर्षों के अवसर पर... साम्राज्यवाद के जुवे को अपने कन्धों से उतारे बगैर दुनिया की मेहनतकश अवाम का कोई भविष्य नहीं

● विराट

पिछली सदी में साम्राज्यवाद ने मानवता को दो बड़े साम्राज्यवादी युद्धों में धकेल कर अपने मुनाफ़े की खातिर बड़े पैमाने पर नर बलि दी। 1914 से 1918 तक चले प्रथम विश्व युद्ध और 1939 से 1945 तक चले द्वितीय विश्व युद्ध ने असंख्य लोगों की जानें लीं। इतिहास में पहले कभी इतने बड़े नरसंहार का सामना मानव समाज को नहीं करना पड़ा था जितना कि इन दो महायुद्धों में करना पड़ा। आज से करीब 100 वर्ष पूर्व 1914 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत हुई। पूरा विश्व दो बड़े खेमों में बँट गया। ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान आदि मित्र शक्तियों (एलाइड पावर्स) के नाम से जाने गये और जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी, ऑटोमन साम्राज्य, बुल्गारिया आदि धुरी शक्तियों (एक्सिस पावर्स) के नाम से जाने गये। मित्र शक्तियों की तरफ से लगभग 4 करोड़ 30 लाख लोगों ने इस युद्ध में हिस्सा लिया जिसमें से लगभग 56 लाख लोग मारे गये और धुरी शक्तियों की तरफ से लगभग 2.5 करोड़ लोगों ने हिस्सा लिया जिसमें से लगभग 44 लाख लोग मारे गये। युद्ध में मित्र शक्तियों की विजय हुई। इस भयंकर युद्ध ने लगभग 1 करोड़ 60 लाख लोगों की जान ले ली और असंख्य लोगों को शारीरिक रूप से बेकार कर दिया। यह युद्ध एक साम्राज्यवादी युद्ध था जो कि नयी पूँजीवादी शक्तियों के उदय के कारण दुनिया के पुनर्विभाजन के लिए लड़ा जा रहा था।

आज प्रथम विश्व युद्ध के 100 वर्ष पश्चात फिर से इसके कारणों की जाँच-पड़ताल करना कोई अकादमिक कवायद नहीं है। आज भी हम साम्राज्यवाद के युग में ही जी रहे हैं और आज भी साम्राज्यवाद द्वारा आम मेहनतकश जनता पर अनेकों युद्ध थोपे जा रहे हैं। इसलिये यह समझना आज भी ज़रूरी है कि साम्राज्यवाद क्यों और किस तरह से युद्धों को जन्म देता है। वैसे तो हर कोई प्रथम विश्व युद्ध के बारे में जानता है लेकिन इसके ऐतिहासिक कारण क्या थे, इस बारे में बहुत सारे भ्रम फैले हुए हैं या फिर अधिक सटीक शब्दों में कहें तो फैलाये गये हैं। अनेकों भाड़े के इतिहासकार इस युद्ध को इस तरह से पेश करते हैं मानो यह कुछ शासकों की निजी महत्वाकांक्षा व सनक के कारण हुआ था। अधिकतर इसकी

पूरी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को गायब कर देते हैं और बताते हैं कि ऑस्ट्रिया के आर्कड्यूक फ्रांज़ फर्डिनान्द की साराजेवो में हत्या के कारण यह युद्ध छिड़ गया। स्कूलों में इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में भी ऐसे ही तात्कालिक कारणों पर पूरा जोर दिया जाता है और युद्ध के मूल कारणों को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है। पूछा जा सकता है कि यदि ऑस्ट्रिया के राजकुमार की हत्या न हुई होती तो क्या प्रथम विश्व युद्ध न हुआ होता? कोई भी गम्भीर पाठक ऐसी तमाम बेवकूफी भरी व्याख्याओं पर विश्वास नहीं करेगा। इस वजह से युद्ध के सही कारणों को सामने रखना आज बेहद ज़रूरी है। प्रथम विश्व युद्ध कई चीज़ों को समझने के लिए बेहद महत्वपूर्ण है। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान पहली बार साम्राज्यवाद के अन्तरविरोध और पूँजीवाद का नरभक्षी चरित्र पूर्णतः नग्न रूप में और इतने बड़े पैमाने पर सामने आया था। यही वह समय था जब सर्वहारा आन्दोलन के गद्दारों और भितरघातियों ने अपने सारे नकाब उतार फेंके थे और उनका असली चेहरा सामने आया था। दूसरे इण्टरनेशनल के तमाम नेता साम्राज्यवादी युद्ध को सर्वहारा क्रान्तियों का अवसर बनाने की बजाय “पितृभूमि की रक्षा” का नारा देते हुए आक्रामक अन्धराष्ट्रवाद की हवा में बह रहे थे। दूसरी ओर, लेनिन के नेतृत्व में बोल्लेविक पार्टी ने युद्ध को क्रान्ति के अवसर में तब्दील करने के क्रान्तिकारी नारे पर अमल किया। इस युद्ध से जो परिस्थितियाँ तैयार हुई थी उन्होंने ही 1917 की अक्टूबर क्रान्ति को जन्म दिया था और लेनिनवाद की विजय हुई थी। यह विश्व युद्ध साम्राज्यवाद के ही घनीभूत होते अन्तरविरोधों के चरम पर पहुँच जाने की अभिव्यक्ति था। दोनों ही विश्व युद्धों के कारणों को समझने के लिए यह जान लेना बेहद ज़रूरी है कि साम्राज्यवाद क्या है और यह किस तरह से अपरिहार्य रूप से युद्धों को जन्म देता है। साम्राज्यवाद के एक-एक पहलू को समझना यहाँ हमारा मकसद नहीं है। अतः बहुत ही संक्षेप में हम साम्राज्यवाद के मूल बिन्दुओं को समझाने की कोशिश करेंगे। यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि पूँजीवाद किन दौरों से गुज़रकर साम्राज्यवाद की मंज़िल में पहुँचा।

लेनिन ने साम्राज्यवाद के सभी पहलुओं को विस्तार से समझाया है। उन्होंने साम्राज्यवाद की स्पष्ट परिभाषा दी है – “साम्राज्यवाद पूँजीवाद की एक विशेष अवस्था है। यह विशिष्ट प्रकृति तीन रूपों में प्रकट होती है : (1) साम्राज्यवाद एकाधिकारी पूँजीवाद है; (2) साम्राज्यवाद हासोन्मुख पूँजीवाद है; और (3) साम्राज्यवाद मरणासन्न पूँजीवाद है।” लेनिन ने साम्राज्यवाद की पाँच बुनियादी विशेषताएँ इस प्रकार गिनायी थीं: “(1) उत्पादन और पूँजी के संकेन्द्रण का परिमाण इस हद तक विकसित हो जाता है कि आर्थिक जीवन पर एकाधिकारी संगठनों का आधिपत्य स्थापित हो जाता है; (2) बैंकिंग पूँजी और औद्योगिक पूँजी एक दूसरे में मिल जाते हैं और इस वित्तीय पूँजी पर एक वित्तीय अल्पतन्त्र का उदय होता है; (3) मालों के निर्यात से पूर्णतया भिन्न, पूँजी का निर्यात एक विशेष महत्त्व ग्रहण कर लेता है; (4) अन्तरराष्ट्रीय एकाधिकार संघों का निर्माण होता है; (5) सर्वाधिक शक्तिशाली पूँजीवादी शक्तियों के बीच पूरी दुनिया का क्षेत्रीय बँटवारा पूरा हो जाता है।” इन बुनियादी विशेषताओं को समझ कर ही हम आधुनिक युद्धों के कारणों को समझने में सक्षम हो पायेंगे। इन विशेषताओं को हम संक्षेप में समझाने का प्रयास करेंगे।

1. एकाधिकार (इजारेदारी) साम्राज्यवाद की आर्थिक बुनियाद है

साम्राज्यवाद को एकाधिकारी पूँजीवाद भी कहा जाता है। पूँजीवाद के प्रथम दौर में इसकी विशेषता ‘स्वतन्त्र प्रतियोगिता’ थी। लेकिन पूँजीवाद की यह विशेषता होती है कि यह अपने स्वयं के अन्तरविरोधों से इजारेदारियों को जन्म देता है। पूँजीवाद का यह आम नियम है कि बड़ी पूँजी छोटी पूँजी को निगल जाती है। एकाधिकारी पूँजीवाद या साम्राज्यवाद का जन्म तीन मंजिलों से होकर गुज़रा। पहली मंजिल में उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक के दौरान ‘स्वतन्त्र प्रतियोगिता’ उत्पादक शक्तियों के विकास के कारण अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गयी। आन्तरिक दहन इंजन, बिजली के मोटर आदि की खोजें हुई जिससे उत्पादक शक्तियों का अभूतपूर्व विकास हुआ। इससे भारी उद्योगों की उत्पादन में सापेक्षिक हिस्सेदारी बढ़ने लगी। 1873 की मन्दी के फलस्वरूप दूसरी मंजिल में उद्यमों के बीच प्रतियोगिता तीखी होती गयी और इसमें भारी पैमाने पर छोटे और मझोले उद्यम बन्द होने लगे। अब एकाधिकारी संघों (कार्टेल, ट्रस्ट, सिण्डिकेट आदि) के विकास का रास्ता साफ हो गया। डीज़ल इंजन, भाप टर्बाइन आदि का अविष्कार होने से उत्पादक शक्तियों का और बड़े पैमाने पर विकास हुआ। उत्पादन में भारी उद्योगों की हिस्सेदारी लगातार और भी अधिक बढ़ती गयी। इस तरह एकाधिकार की मंजिल तक संक्रमण की परिस्थितियाँ बुनियादी तौर पर पूरी हो चुकी थीं। लेकिन इसके बाद उत्पादक शक्तियों का विकास अवरुद्ध होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तीसरी मंजिल में पूँजी के संचय और संकेन्द्रण की गति बेहद तेज़ हो चुकी थी। बड़े उद्यमों के हाथों में पूँजी का संकेन्द्रण अधिकाधिक होता गया। एकाधिकारी संगठन तेज़ी से विकसित होते गये और

समस्त आर्थिक जीवन की बुनियाद बन गये। इस समय तक एकाधिकारी संगठन काफी मज़बूती से ज़्यादातर उत्पादों के उत्पादन और वितरण पर नियन्त्रण कायम कर चुके थे और पूँजीवादी देशों की नब्ज़ उनके हाथों में आ चुकी थी। ये एकाधिकारी संगठन बिक्री की शर्तों, अदायगी की तिथियों आदि के बारे में समझौता कर लेते थे। वे मण्डियों को आपस में बाँट लेते थे और कितना माल पैदा किया जायेगा और क्या कीमतें रखी जायेगी, यह भी तय कर लेते थे। इन संगठनों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी। 1896 में जर्मनी में कार्टेलों की संख्या लगभग 250 थी और 1905 आते-आते यह बढ़कर 385 तक जा पहुँची थी। इनमें लगभग 12000 उद्यम हिस्सा ले रहे थे। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1900 तक 185 ट्रस्ट अस्तित्व में आ चुके थे और 1907 आते-आते ट्रस्टों की संख्या 250 हो गयी थी। ये कार्टेल और ट्रस्ट उद्योग की किसी शाखा का 70-80 प्रतिशत हिस्सा अपने हाथों में संकेंद्रित कर लेते थे। इनमें काम करने वाले मज़दूर कुल मज़दूरों का 70 से 75 प्रतिशत होते थे जबकि इन उद्यमों की संख्या कुल उद्यमों के लगभग चौथाई ही होती थी। देखा जा सकता है कि ये संगठन किस तक उत्पादन को अपने नियन्त्रण में रखते थे। ये बड़े एकाधिकारी संगठन छोटे उद्यमों को लगातार ख़त्म करते गये। इस तरह ‘स्वतन्त्र प्रतियोगिता’ के गर्भ से ही एकाधिकार पैदा हुआ लेकिन इसने किसी भी तरह होड़ को समाप्त नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत इसने होड़ को और अधिक तीखा कर दिया। पूँजीवादी समाज में होड़ कभी समाप्त नहीं होती। एकाधिकारी और गैर-एकाधिकारी संगठनों के बीच होड़ लगातार जारी रहती है, एकाधिकारी संगठनों के बीच आपस में भी कच्चे माल के स्रोतों और बाज़ार आदि के लिए होड़ जारी रहती है। एक ही एकाधिकारी संगठन के विभिन्न उद्यमों के बीच भी होड़ लगातार जारी रहती है।

2. वित्तीय पूँजी की बुनियाद पर एक वित्तीय अल्पतन्त्र का उदय

‘स्वतन्त्र प्रतियोगिता’ के दौर में बैंक समाज में निष्क्रिय पड़े हुए धन को इकट्ठा करते थे और मैनुफैक्चरिंग करने वाले और वाणिज्यिक पूँजीपतियों को अल्पावधिक ऋण के रूप में देकर एक बिचौलिये की भूमिका निभाते थे। लेकिन जैसे-जैसे पूँजीवाद ‘स्वतन्त्र प्रतियोगिता’ से एकाधिकार की मंजिल में प्रविष्ट हुआ, वैसे-वैसे बैंकों की भूमिका भी बदलती गयी। वह बिचौलिये की भूमिका से आगे बढ़कर एक सर्वशक्तिमान एकाधिकारी में तब्दील हो गया। बैंकिंग उद्योग में एकाधिकार ने बैंकिंग और मैनुफैक्चरिंग उद्योग के रिश्तों में मूलभूत परिवर्तन ला दिया। तीखी होती प्रतिस्पर्धा ने ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दीं जिनके कारण बैंक पूँजी और औद्योगिक पूँजी के विलय की स्थिति पैदा हुई। बैंकों ने अपनी पूँजी को औद्योगिक घरानों को ब्याज़ पर देना शुरू किया। शुरुआत में उनकी स्थिति महज़ सहायक की थी। लेकिन जल्द ही बैंकों की स्थिति अधिक से अधिक नियन्त्रणकारी बनने लगी। साथ ही, यह प्रक्रिया इसके ठीक विपरीत रूप में भी घटित हुई। तमाम बड़े औद्योगिक घरानों ने

बैंकों को या उनके शेयरों को खरीदना शुरू किया या फिर अपने बैंक स्थापित कर बैंकिंग के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पूँजी संचय हेतु हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। मैन्युफैक्चरिंग स्टॉक को बड़े बैंक भारी मात्रा में खरीदने लगे, इसके साथ ही मैन्युफैक्चरिंग एकाधिकारी संगठन भी बैंकों के स्टॉक खरीदने लगे। इस तरह एकाधिकारी बैंकिंग पूँजी और एकाधिकारी मैन्युफैक्चरिंग पूँजी का धीरे-धीरे विलय हो गया और वित्तीय पूँजी अस्तित्व में आयी तथा बेशुमार वित्तीय पूँजी के स्वामी पूँजीपति वित्तीय सम्राट बन गये। ये विराटकाय वित्तीय घराने आने वाले समय में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं को अधिक से अधिक नियन्त्रित करने लगे। और जैसा कि अपेक्षा की जा सकती थी, जल्द ही ये वित्तीय दैत्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक ढाँचे को भी नियन्त्रित करने लगे।

3. माल निर्यात से भिन्न पूँजी के निर्यात का असाधारण महत्त्व ग्रहण करना

स्वतन्त्र प्रतियोगिता के दौर में पूँजीवाद की आभिलाक्षणीकता मालों का निर्यात होती थी पर साम्राज्यवाद आते-आते पूँजी के निर्यात ने असाधारण महत्त्व ग्रहण कर लिया। साम्राज्यवाद के युग से पहले 'स्वतन्त्र प्रतियोगिता' के दौर में भी पूँजी का निर्यात होता था पर यह व्यापक नहीं था। 1862 में इंग्लैण्ड द्वारा विदेशों में लगाई गयी पूँजी 3.6 अरब फ्रैंक थी, 1893 में यह 42 अरब फ्रैंक हो गयी और प्रथम विश्व युद्ध आते-आते यह 75 से 100 अरब फ्रैंक तक हो गयी थी। आसानी से देखा जा सकता है कि साम्राज्यवाद के दौर में पूँजी के निर्यात में अपार वृद्धि आ जाती है। पूँजीवादी देशों के भीतर सभी मुनाफ़ा देने वाले कारोबारों पर पहले ही एकाधिकार कायम हो चुका था। इसलिए पहले अपने देश के मेहनतकशों के खून को निचोड़कर संचित की हुई पूँजी को उन देशों में लगाया गया जहाँ पूँजी का अभाव था और श्रम और कच्चे माल बेहद सस्ते थे। इन देशों में मजदूरी बेहद कम थी, जमीनें और कच्चे माल आसानी से और बहुत सस्ती कीमतों पर मिल जाते थे। इन देशों के मजदूरों का निर्मम शोषण किया गया और पूँजी का अम्बार खड़ा किया गया। वित्तीय पूँजी के दौर में पूँजी का निर्यात स्वाभाविक था। देशी बाज़ारों के सन्तृप्ति बिन्दु पर पहुँचने के साथ और साथ ही देशी अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की दरों के ख़तरनाक हदों तक गिर जाने के साथ साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपति वर्ग के लिए पूँजी निर्यात अधिक उपयुक्त नीति थी। विश्व पैमाने पर जारी प्रतिस्पर्द्धा में मालों के उत्पादन की लागत को कम से कम रखने के लिए साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपति वर्ग को सस्ते से सस्ता श्रम और सस्ते से सस्ता कच्चा माल चाहिए था। और यह उन्हें उपनिवेशों में मिल सकता था। साथ ही, अपने देश के भीतर मजदूर आन्दोलन के बढ़ते दबाव से निजात पाने और अपने देश के भीतर मजदूर वर्ग को कुछ सहूलियतें मुहैया कराने के लिए भी जिस चीज़ की ज़रूरत थी, वह था पूँजी निर्यात। पहले उन्नत पूँजीवादी देश अपने यहाँ उत्पादन कर उपनिवेशों के बाज़ारों में बेच रहे थे और उपनिवेशों से कच्चे माल की आपूर्ति करवा रहे थे। लेकिन अब कच्चे

माल को सात समन्दर पार ले जाकर उत्पादित माल को वापस उपनिवेशों में लाकर बेचने की बजाय ज़्यादा बेहतर था कि पूँजी का निर्यात कर उपनिवेशों में ही माल को उत्पादित किया जाय और उसे दुनिया भर में बाज़ारों में बेचा जाय। जल्द ही पूँजी का निर्यात प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी जबकि माल का निर्यात गौण हो गया।

4. अन्तरराष्ट्रीय एकाधिकारी संघों का निर्माण और उनके बीच दुनिया का बँटवारा

लेनिन ने बेहद सटीक शब्दों में इस परिघटना को समझाया है—“पूँजीपतियों के एकाधिकारी संघ, कार्टेल, सिण्डिकेट तथा ट्रस्ट सबसे पहले अपने देश के बाज़ार को आपस में बाँट लेते हैं, उस देश के उद्योगों को कमोबेश पूरी तरह अपने कब्ज़े में कर लेते हैं। परन्तु पूँजीवाद के अन्तर्गत देश का बाज़ार अनिवार्य रूप से विदेशी मण्डी के साथ सम्बद्ध होता है। पूँजीवाद ने बहुत पहले विश्व मण्डी तैयार कर दी थी। जैसे-जैसे पूँजी का निर्यात बढ़ता गया और बड़े-बड़े एकाधिकारी संघों के वैदेशिक तथा औपनिवेशिक सम्बन्ध और प्रभाव-क्षेत्र हर तरह से बढ़ते गये, वैसे-वैसे हालात स्वाभाविक रूप से इन संघों के बीच अन्तरराष्ट्रीय समझौते की दिशा में और अन्तरराष्ट्रीय कार्टेलों के निर्माण की दिशा में अग्रसर होते गये। यह पूँजी तथा उत्पादन के विश्वव्यापी संकेन्द्रण की नयी मंज़िल है, जो पहले की तमाम मंज़िलों से कहीं ज़्यादा ऊँची है।” ये अन्तरराष्ट्रीय कार्टेल छोटी-मोटी कम्पनियों को अपने अधीन कर लेते थे और दुनिया के आर्थिक बँटवारे के लिए आपस में समझौते कर लेते थे। स्टैण्डर्ड ऑयल कम्पनी, जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी, जनरल मोटर्स कम्पनी आदि इसी तरह के अन्तरराष्ट्रीय संघ बनकर उभरे थे। विभिन्न समझौतों के ज़रिये दुनिया का आर्थिक बँटवारा करने के बाद भी अन्तरराष्ट्रीय संघों के बीच का संघर्ष समाप्त नहीं होता बल्कि बढ़ता ही है। चूँकि ये संघ साम्राज्यवाद की आभिलाक्षणीकता हैं और साम्राज्यवाद स्वयं पूँजीवाद की ही एक चरम अवस्था है इसलिए जब तक वर्गों का अस्तित्व है, तब तक इन संघों के बीच के संघर्ष की प्रकृति और इस संघर्ष की अन्तर्वस्तु कभी बदलती नहीं हैं और केवल इसका रूप ही बदलता रहता है। साम्राज्यवाद के युग में संकेन्द्रण जिस हद तक पहुँच चुका होता है, उसमें पूँजीपतियों के पास मुनाफ़ा कमाने के लिए दुनिया का बँटवारा करने के अलावा कोई चारा नहीं बचता। यह बँटवारा पूँजी के अनुपात और शक्ति के अनुपात से होता है और शक्ति के अनुपात में बदलाव के साथ ही यह संघर्ष तीखा होता जाता है और राजनीतिक संघर्षों का रूप ले लेता है। लेनिन के शब्दों में — “पूँजीवादी संघों के बीच कुछ ऐसे सम्बन्ध पैदा हो जाते हैं, जो दुनिया के आर्थिक बँटवारे पर आधारित होते हैं और इनके साथ-साथ तथा इन्हीं के सिलसिले में राजनीतिक संघों के बीच, राज्यों के बीच कुछ ऐसे सम्बन्ध पैदा होते हैं, जिनका आधार दुनिया का क्षेत्रीय बँटवारा, उपनिवेशों के लिए संघर्ष, “आर्थिक क्षेत्रों के लिए संघर्ष” होता है।”

5. साम्राज्यवादी शक्तियों के बीच दुनिया का क्षेत्रीय बँटवारा

साम्राज्यवाद के युग में साम्राज्यवादी पूँजी द्वारा दुनिया के आर्थिक बँटवारे ने उपनिवेशों के रूप में दुनिया के क्षेत्रीय बँटवारे को जन्म दिया। वैसे तो उपनिवेशों के लिए छीना-झपटी पूँजीवादी देशों के बीच काफी पहले ही शुरू हो गयी थी लेकिन साम्राज्यवाद के युग में यह संघर्ष अपने चरम पर पहुँच गया। जर्मनी और अन्य यूरोपीय देश व संयुक्त राज्य अमेरिका ब्रिटिश आधिपत्य को चुनौती देने लगे थे। जैसे-जैसे इन देशों की शक्ति का अनुपात बढ़ता गया वैसे-वैसे यह संघर्ष तीव्रतर होता गया। प्रथम विश्व युद्ध आते-आते पूरी दुनिया का क्षेत्रीय बँटवारा यूरोपीय साम्राज्यवादी देशों के बीच पूरा हो चुका था। यदि आँकड़ों को उठाकर देखा जाये तो यह साफ़ हो जाता है। जहाँ 1876 तक यूरोपीय औपनिवेशिक ताकतों का आधिपत्य अफ्रीका के केवल 10.8 प्रतिशत क्षेत्र पर था, वहीं 1900 आते-आते अफ्रीका के 90.4 प्रतिशत क्षेत्र पर आधिपत्य कायम कर लिया गया था। पोलिनेशिया के 57 प्रतिशत क्षेत्र पर 1876 तक आधिपत्य कायम हो चुका था जो 1900 आते-आते 99 प्रतिशत हो चुका था। एशिया के 57 फीसदी क्षेत्र पर औपनिवेशिक ताकतें अपना कब्ज़ा जमा चुकी थीं। ऑस्ट्रेलिया का पूर्ण उपनिवेशीकरण पहले से ही हो चुका था। इस तरह पूरी दुनिया का विभाजन साम्राज्यवाद के दौर में पूरा हो चुका था और अब केवल उसका पुनर्विभाजन ही हो सकता था। इस परिघटना को लेनिन ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—“पूँजीवादी देशों की औपनिवेशिक नीति ने हमारी इस पृथ्वी पर अनधिकृत प्रदेशों पर आधिपत्य जमाने का काम पूरा कर लिया है। पहली बार दुनिया पूरी तरह बँट गयी है और इसलिए भविष्य में उसका पुनर्विभाजन ही सम्भव है, अर्थात् अब यह नहीं हो सकता कि कोई ऐसा इलाका, जिसका कोई मालिक न हो, किसी “मालिक” के कब्ज़े में आ जाये, बल्कि अब तो केवल यह हो सकता है कि इलाके एक “मालिक” से दूसरे के हाथ में चले जायें।” यानी कि एक साम्राज्यवादी युद्ध के लिए पूर्वपीठिका तैयार हो चुकी थी।

इस तरह से हमने देखा कि साम्राज्यवाद के अन्तर्विरोध तीव्रतर होते जाते हैं और अन्ततः साम्राज्यवाद युद्धों को जन्म देता ही है। प्रथम विश्व युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध था और साम्राज्यवाद के तीखे होते हुए अन्तर्विरोधों के चरम पर पहुँच जाने की ही अभिव्यक्ति था। इसे किन्ही शासकों के षड्यन्त्र या किसी राजकुमार की हत्या के कारण जनित मानना अनैतिहासिकता होगी। काफी पहले से ही साम्राज्यवादी युद्ध की सम्भावनाएँ बनने लगी थी। 1910 आते-आते यह स्पष्ट हो गया था कि विश्व ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा है। दुनिया का पुनर्विभाजन अब युद्ध के ज़रिये ही हो सकता था। 1876 से 1914 के बीच फ्रांस और जर्मनी बड़ी पूँजीवादी ताकतों के रूप में उभरे और जैसे-जैसे इनकी शक्ति बढ़ती गयी वैसे-वैसे उपनिवेशों के लिए संघर्ष तीखा होता गया। यह भी समझने की ज़रूरत है कि आखिर उपनिवेश पूँजीवादी देशों के लिए इतने महत्वपूर्ण क्यों

थे। पहला, उपनिवेश साम्राज्यवाद के लिए कच्चे मालों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत थे। चूँकि इज़ारेदारी ने बड़े पैमाने के उत्पादन को जन्म दिया, उत्पादन का पैमाना बढ़ते जाने के साथ ही कच्चे माल की ज़रूरत अधिकाधिक बढ़ती गयी और उनके स्रोतों पर कब्ज़ा करना महत्वपूर्ण होता गया। दूसरा, उपनिवेशों में साम्राज्यवादी देशों के एकाधिकारी संगठन मजदूरों का अधिक निर्मम शोषण कर सकते थे। तीसरा, एकाधिकारी संगठनों के लिए उपनिवेश सर्वाधिक लाभदायक बाज़ार थे। चौथा, अपना विश्व प्रभुत्व कायम करने के लिए साम्राज्यवादी उपनिवेशों को अपना आधार क्षेत्र बनाते थे, युद्ध के लिए उपनिवेशों से सैनिक भर्ती किये जा सकते थे, उपनिवेशों की जनता पर भारी कर थोपकर युद्ध के लिए संसाधन जुटाये जा सकते थे। पाँचवा, साम्राज्यवादी उपनिवेशों में भयंकर लूट मचाकर अपने देश के भीतर पनप रहे मजदूर वर्ग के गुस्से को एक हद तक शान्त कर सकते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में ब्रिटेन के एक वित्तीय सम्राट सेसील रोड्स ने एक जगह साम्राज्यवाद की हिमायत करते हुए कहा था—“युनाइटेड किंगडम के 4 करोड़ निवासियों को रक्तपातपूर्ण गृहयुद्ध से बचाने के लिए हम लोगों, औपनिवेशिक राजनीतिज्ञों को यहाँ की बेशी आबादी को बसाने के लिए और यहाँ के कारखानों तथा खानों की पैदावार की खपत के वास्ते नयी मण्डियाँ मुहैया करने के लिए नये इलाके हासिल करने होंगे। जैसा कि मैंने हमेशा कहा है, साम्राज्य दाल-रोटी का सवाल है। यदि आप गृहयुद्ध से बचना चाहते हैं, तो आपको साम्राज्यवादी बनना पड़ेगा।” साफ़ देखा जा सकता है कि साम्राज्यवादियों के लिए उपनिवेशों के लिए संघर्ष कितने महत्वपूर्ण बन गये थे। साम्राज्यवादी ताकतों के विकास के साथ साम्राज्यवादी युद्ध अपरिहार्य हो गया था। 1876 से 1914 के दौरान ब्रिटेन के उपनिवेशों का क्षेत्रफल 225 लाख वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 335 लाख वर्ग किलोमीटर हो गया था। फ्रांस के उपनिवेशों का क्षेत्रफल 60 लाख वर्ग किलोमीटर से बढ़कर 106 लाख वर्ग किलोमीटर हो गया था। जर्मनी जिसके पास पहले कोई उपनिवेश नहीं थे वह भी 1914 तक 29 लाख वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल पर कब्ज़ा जमा चुका था। संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान भी लगातार शक्तिशाली होते जा रहे थे। जापान 1904-05 में रूस को करारी शिकस्त दे चुका था। ऑटोमन साम्राज्य का विघटन हो रहा था और बाल्कन राज्यों पर सारे साम्राज्यवादी जीभ लपलपा रहे थे। साम्राज्यवादी देशों के लिए भी स्पष्ट था कि युद्ध ज़्यादा दूर नहीं है। सभी साम्राज्यवादी देश अपनी सैन्य ताकत को 1890 के बाद से ही बढ़ाने में लगे हुए थे। ब्रिटेन का सैन्य व्यय जहाँ 1887 में 32 मिलियन पाउण्ड था; वह 1894 में 44 मिलियन पाउण्ड और 1913 तक 77 मिलियन पाउण्ड हो चुका था। जर्मनी का सैन्य व्यय जहाँ 1895 में 90 मिलियन मार्क प्रति वर्ष था, वहीं 1913 आते-आते वह 400 मिलियन मार्क प्रतिवर्ष हो चुका था। शस्त्र उद्योग का 70 फीसदी से ज़्यादा हिस्सा एकाधिकारी संगठनों के हाथों में था। युद्ध के संकेत मिल चुके थे। जुलाई-अगस्त 1914 में साम्राज्यवादी अन्तर्विरोध मुखर होकर सामने आये और विश्व युद्ध की

शुरुआत हुई। यह हम देख ही चुके हैं कि इस युद्ध के ऐतिहासिक कारण पूँजीवाद के साम्राज्यवाद में संक्रमण में ही निहित हैं। दोनों साम्राज्यवादी खेमों किस तरह के समझौतों के द्वारा अस्तित्व में आये, युद्ध के दौरान शक्ति सन्तुलन किस प्रकार बदलता रहा और युद्धोपरान्त कैसी-कैसी “शान्ति” संधियाँ हुईं; यह सब एक अलग लेख के विषय हो सकते हैं। हमारा मकसद पूरे युद्ध का वर्णन करना नहीं है और इसके ऐतिहासिक कारणों तक ही हम खुद को सीमित रख पायेंगे।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान ही समाजवादी खेमे में मौजूद अवसरवादियों और संशोधनवादियों का चरित्र भी खुलकर सामने आया था। इनकी अगुवाई दूसरे इण्टरनेशनल का नेता काउत्स्की कर रहा था। 1912 में बैसेल (स्विट्ज़रलैण्ड) में दूसरे इण्टरनेशनल की एक कांग्रेस में एक घोषणापत्र जारी किया गया था जो इस बात पर जोर दिया गया था कि यदि साम्राज्यवादी युद्ध छिड़ता है तो समाजवादियों को युद्धजनित आर्थिक और राजनीतिक संकट से लाभ उठाकर समाजवादी क्रान्ति के लिए अपना संघर्ष तीव्र कर देना चाहिए। उस समय दूसरे इण्टरनेशनल के काउत्स्की, वानडरवेल्ले आदि नेताओं ने कांग्रेस में इस युद्ध विरोधी घोषणापत्र का समर्थन किया था। लेकिन जैसे ही साम्राज्यवादी युद्ध छिड़ा तो इन नेताओं ने सर्वहारा वर्ग से गद्दारी करते हुए अपने देशों की बुर्जुआ सरकारों की साम्राज्यवादी नीति का खुलकर समर्थन किया और साम्राज्यवादी युद्ध को पितृभूमि की रक्षा के लिए लड़ा जाने वाला युद्ध बताया। इसके फलस्वरूप जल्दी ही दूसरे इण्टरनेशनल का पतन हो गया। रूस में बोल्शेविक पार्टी ने ही लेनिन की अगुवाई में दृढ़ता से सही नीति अपनाते हुए युद्धजनित राजनीतिक संकट का फायदा उठाकर साम्राज्यवादी युद्ध को गृहयुद्ध में तब्दील कर देने का नारा दिया और रूस की महान अक्टूबर क्रान्ति सम्पन्न हुई। लेनिन ने यह सिद्ध किया कि साम्राज्यवादी युद्ध क्रान्तिकारी परिस्थितियाँ भी तैयार करते हैं और अगर सर्वहारा वर्ग के पास उसका नेतृत्व करने वाली संगठित, तपी-तपायी और क्रान्ति के विज्ञान की सुसंगत समझ रखने वाली एक पार्टी हो तो क्रान्तिकारी परिस्थितियों से लाभ उठाकर वह साम्राज्यवाद की संगठित ताकतों को पराजित कर सकता है।

पूँजीवाद के कारण उत्पन्न हुए संकटों से निजात पाने के लिए और अपना विश्व प्रभुत्व कायम करने के लिए साम्राज्यवादी हर-हमेशा मेहनतकश जनता पर युद्ध थोपते ही हैं। दूसरे विश्व युद्ध को भी सिर्फ हिटलर की सनक और यहूदियों के प्रति नफरत के कारण जनित मानना अनैतिहासिकता होगी। दूसरा विश्व युद्ध भी साम्राज्यवाद के भीतर के अन्तर्विरोधों के फट पड़ने का ही नतीजा था। प्रथम विश्व युद्ध में जर्मनी की बुरी हार हुई थी और उसपर कड़े जुर्माने लगाये गये थे। इसके बाद भी जर्मनी में औद्योगिक उत्पादन 1927 आते-आते पहले जितनी रफ्तार पकड़ चुका था। युद्ध के बाद आयी तेजी ने पूँजीवाद को कुछ साँस ले लेने की मोहलत दी थी। लेकिन पूँजीवाद में संकटों का पैदा होना अवश्यम्भावी है और 1929-30 में महामन्दी ने पूँजीवाद के दरवाजे पर फिर से दस्तक दी। यह मन्दी इतिहास की सबसे ख़तरनाक मन्दी साबित हुई। इससे

निजात पाने के लिए साम्राज्यवादियों को एक और भीषण युद्ध की दरकार थी। जापान और जर्मनी का औद्योगिक विकास काफी बड़े पैमाने पर हुआ था। जापान प्रथम विश्व युद्ध में विजयी खेमों के साथ था लेकिन उसे कुछ विशेष हासिल नहीं हुआ था। मन्दी के दौर में मुनाफ़े के बेहद संकुचित हो जाने के कारण और मजदूर आन्दोलन को दबाने के कारण जर्मनी के पूँजीपतियों को हिटलर जैसे ही राक्षस की ज़रूरत थी। मुनाफ़े की हवस एक बार फिर विश्व को तबाही की ओर ले जा रही थी। जर्मनी, इटली, अमेरिका, जापान आदि की शक्ति का अनुपात लगातार बढ़ता जा रहा था और दुनिया के पुनर्विभाजन का सवाल एक बार फिर सामने आ खड़ा हुआ था। आर्थिक संकट से निजात पाने के लिए और अपना विश्व प्रभुत्व कायम करने के लिए साम्राज्यवादियों के बीच में एक और भीषण युद्ध अपरिहार्य था और 1939 में यह फूट पड़ा।

लेनिन ने साम्राज्यवाद को मरणासन्न पूँजीवाद कहा था। उन्होंने कहा था कि साम्राज्यवाद सर्वहारा क्रान्तियों की पूर्वबेला है। आज जिस युग में हम जी रहे हैं वह साम्राज्यवाद का ही युग है। अपने रूपों में तमाम बदलावों के बावजूद साम्राज्यवाद की अन्तर्वस्तु आज भी वही है। मौजूदा समय में साम्राज्यवाद पहले से भी अधिक खोखला हो चुका है। पिछली शताब्दी में साम्राज्यवाद ने दो विश्व युद्धों समेत अनेकों छोटे-बड़े युद्धों को जन्म दिया। दो बड़े विश्व युद्धों में साम्राज्यवादियों को स्वयं बेहद नुकसान उठाना पड़ा। आज साम्राज्यवादी देशों की अर्थव्यवस्था एक-दूसरे के कंधे का सहारा लेकर खड़ी हैं और इसको देखते हुए साम्राज्यवादी आज तीसरे विश्व युद्ध की परिस्थितियाँ बेहद अल्प हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवाद की कार्यशैली में कई परिवर्तन आये हैं। इन परिवर्तनों में सबसे अहम है दुनिया का विऔपनिवेशीकरण। अब दुनिया उस तरफ़ वापस नहीं लौट सकती है, जब अफ़्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका के तमाम देश साम्राज्यवादी शक्तियों के पूर्ण उपनिवेश और गुलाम थे। आज भी साम्राज्यवाद की लूट का दबाव इन्हीं महाद्वीपों के उत्तर-औपनिवेशिक देशों पर ज़्यादा है, लेकिन यह भी सच है कि इन उत्तर-औपनिवेशिक देशों का शासक पूँजीपति वर्ग अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को बरकरार रखता है। यह वास्तव में साम्राज्यवाद का कनिष्ठ साझीदार बनकर उससे सौदे और मोलभाव करता है। उसके बाद एक विशालकाय बाज़ार, एक विशालकाय सस्ती श्रम शक्ति और कच्चे मालों का भण्डार है, तो दूसरी ओर उसे प्रतिस्पर्द्धा में टिके रहने के लिए पूँजी और तकनोलॉजी की भी आवश्यकता है। वहीं साम्राज्यवादी देशों के संकट से घिरे पूँजीपति वर्ग को नये बाज़ारों और पूँजी के आधिक्य को निपटाने के लिए लाभपूर्ण निवेश के नये अवसरों की आवश्यकता है। इस नयी स्थिति ने विश्व पूँजीवाद के आन्तरिक समीकरणों को बदला है। आज विश्वयुद्ध के होने की गुंजाइश कम है। उस प्रकार से विश्व भर में शक्तियों का ध्रुवीकरण होना ही बहुत मुश्किल है। इसलिए छोटे पैमाने के क्षेत्रीय युद्धों (रीजनल थियेटर्स ऑफ़ वॉर) के मंचों पर साम्राज्यवादी अपने अन्तरविरोधों को निपटाने का प्रयास कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये

क्षेत्रीय युद्ध उन्हीं क्षेत्रों में होंगे जो कि विश्व पूँजीवाद के लिए आर्थिक, रणनीतिक, सामरिक और राजनीतिक तौर पर विशेष अहमियत रखते हैं। यही कारण है कि पश्चिम एशिया और यूक्रेन आज ऐसे दो क्षेत्रीय युद्धों के मंच बने हुए हैं जहाँ साम्राज्यवादी अन्तरविरोध गुत्थमगुत्था हैं। साम्राज्यवादियों के बीच युद्ध अन्य रूप भी ले रहा है, जैसे कि मुद्रा युद्ध। साथ ही एक अन्य कारण भी है जिसके कारण आज विश्व युद्ध की सम्भावना कम है और वह है आणविक डेटरेण्ट की मौजूदगी। निश्चित तौर पर, ऐसा कोई सामरिक कारक अपने आप में निर्धारक भूमिका नहीं निभा सकता। लेकिन साम्राज्यवाद की पूरी संरचना और कार्य प्रणाली में आये बदलावों के सन्दर्भ में इसकी भी एक भूमिका बनती है। आज का साम्राज्यवादी विश्व पहले से कहीं ज्यादा तीखी प्रतिस्पर्द्धा का साक्षी बन रहा है। 'पैक्स ब्रिटानिका' जैसा दौर फिर कभी नहीं आ सकता है; वह साम्राज्यवाद के एक विशिष्ट दौर में ही सम्भव था। सोवियत संघ के विघटन के बाद कुछ समय के लिए 'पैक्स अमेरिकाना' जैसी स्थिति का दृष्टिभ्रम पैदा हुआ था, जिसका शिकार कई मार्क्सवादी भी हो गये थे। लेकिन वह दृष्टिभ्रम 2000 के पहले दशक में ही टूट गया। आज हम अमेरिकी आर्थिक शक्तिमत्ता के उतार के साक्षी बन रहे हैं और अन्य साम्राज्यवादी शक्तियों के उदय और उभार को भी देख रहे हैं, जो कि अमेरिकी साम्राज्यवादी वर्चस्व के साथ ज़रूरत पड़ने पर सौदे भी कर रही हैं, और उन्हें चुनौती भी दे रही हैं। ऐसे समय में, तृतीय विश्वयुद्ध की गुंजाइश कम ही नज़र आती है।

लेकिन इसका यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि साम्राज्यवाद के अस्तित्व के लिए युद्ध आवश्यक नहीं है। आज भी साम्राज्यवाद का मतलब युद्ध ही है। जैसा कि हमने पहले जिक्र किया, फ़िलहाल, अरब जगत साम्राज्यवादी युद्धों का एक रंगमंच बना हुआ है। यूक्रेन विवाद भी साम्राज्यवादी देशों के बीच संघर्ष की ही अभिव्यक्ति है। अफ़गानिस्तान और इराक़ में पहले ही

साम्राज्यवादी युद्ध थोपे जा चुके हैं। आज साम्राज्यवाद 1930 के बाद की महामन्दी के बाद की सबसे बड़ी मन्दी से जूझ रहा है। खुद के आर्थिक और राजनीतिक संकटों से निजात पाने के लिए साम्राज्यवादी देश आज भी युद्धों पर ही आश्रित हैं। आज का साम्राज्यवाद सट्टेबाज पूँजी के आधिपत्य वाली अस्थिर-अराजक भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था पर खड़ा है जिसकी नींव एकदम खोखली हो चुकी है और यह अपनी जड़ता की शक्ति के कारण ही कायम है। जब तक इसका विनाश नहीं हो जाता तब तक यह मानव समाज के लिए ख़तरा बना रहेगा और मानवता पर युद्ध लादता जायेगा और साथ ही पर्यावरण को भी ख़तरनाक हदों तक तबाह करता जायेगा। लेकिन यह अपनी गति से स्वयं ही नहीं ढह जायेगा। जैसा कि माओ ने कहा था-“जब हम कहते हैं कि साम्राज्यवाद बहुत ख़तरनाक है तब हमारा तात्पर्य यह होता है कि इसका चरित्र कभी नहीं बदल सकता। साम्राज्यवादी अपना विनाश होने तक न तो हथियार रखेंगे और न ही स्वेच्छा से बौद्ध बन जायेंगे।”

प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषका के सौ वर्षों के अवसर पर यह अपने आपको फिर से याद दिलाने की ज़रूरत है कि पूँजीवाद-नामक मुनाफ़ाखोर, कफ़नखसोट, मुर्दाखोर और सड़ांध मारती नरभक्षी व्यवस्था ने मुनाफ़े की ख़ातिर कितने लोगों की नरबलियाँ दी हैं और आज भी लगातार दे रहा है। फ़िलिस्तीन से लेकर इराक़, सीरिया, लेबनॉन, यूक्रेन, अफ़्रीका के तमाम देशों में हज़ारों-हज़ार बेगुनाह नागरिकों की कुरबानी किसलिये दी जा रही है? सिर्फ़ इसलिए कि साम्राज्यवादी धनपशुओं का मुनाफ़ा कायम रहे। साम्राज्यवाद-पूँजीवाद का एक-एक दिन हमारे लिए भारी है। इसे बहुत पहले ही इतिहास की कचरा-पेटी में फेंक दिया जाना चाहिए था। अब भी अगर हम यह समझते नहीं और इस लुटेरे निज़ाम को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिए एकजुट नहीं होते, तो कल बहुत देर हो जायेगी।

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जिसे साम्राज्यवाद कहते हैं, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

— भगतसिंह (असेम्बली बम केस में सेशन कोर्ट में बयान का अंश)

विज्ञान के इतिहास का विज्ञान

(पहली किस्त)

● सनी

प्राकृतिक विज्ञान मानव समाज के साथ विकसित होता रहा है। पहिले की खोज, दिन और रात का ज्ञान, बीमारियों से लड़ते हुए जड़ी-बूटियों की खोज, लिवर-पुली, तीर-धनुष, और अगर इतिहास के ग्राफ़ पर समय की धुरी को आगे बढ़ायें तो टेलिस्कोप, कम्प्यूटर, जेनेटिक थियरी (आनुवंशिकता सिद्धान्त), सापेक्षिकता सिद्धान्त आदि प्राकृतिक विज्ञान की प्रगति के कुछ मील के पत्थर हैं। क्या इस प्रगति या विकास के निश्चित नियम होते हैं? जिस तरह प्राकृतिक विज्ञान प्रकृति के अलग-अलग संस्तरों का अध्ययन करता है उसी तरह क्या हम प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन कर सकते हैं? इस अध्ययन को कैसे किया जायेगा? क्या हम प्राकृतिक विज्ञान में हुई खोजों को एकरेखीय रूप से एक के ऊपर एक जोड़ते चले जायें और इनके मूलतत्त्व या इनकी परिभाषाओं से विज्ञान के विकास को आंकें? $E=mc^2$ का फ़ार्मूला आइन्स्टीन और उनके विज्ञान के प्रति समर्पित जीवन के बारे में कुछ नहीं बोलता। न ही यह फ़ार्मूला इस सिद्धान्त को विकसित करने में लगे परिश्रम व इसके उद्भव से जुड़ी बहसों को दिखाता है। हम अकादमिक किताबों में गैलीलियो के सापेक्षिकता के सिद्धान्त के बाद सीधे आइन्स्टीन के सापेक्षिकता के सिद्धान्त को पढ़ते हैं! समय का प्रभाव यानी ऐतिहासिकता अकादमिक विमर्शों में गायब होती है। विज्ञान का कोई भी अध्ययन या आकलन, जो कि ऐतिहासिकता से रिक्त हो, सतही होगा क्योंकि इन खोजों के नीचे उन लोगों की जिन्दगियाँ और उनकी बहसें दबी हुई हैं जिन्होंने इसे विकसित किया। यह विकास बेहद जटिल गति लिए हुए है। इस जटिल गति की छानबीन करना उन लोगों की जिन्दगियों में भी झाँकने को मजबूरकरता है जिन्होंने प्राकृतिक विज्ञान को उसका यह स्वरूप दिया, या कहे कि प्राकृतिक विज्ञान के मील के पत्थर इन व्यक्तियों के जीवन को भी कहा जा सकता है, जिन्होंने विज्ञान के सिद्धान्तों या खोजों में अपना जीवन लगा दिया। मानवीय प्रतिभाओं की असीमित संख्या से ही प्राकृतिक विज्ञान भरा हुआ है। ब्रूनों, कोपरनिकस, गैलीलियो, आइन्स्टीन, डॉकिंस व अन्य व्यक्तियों के जीवन और उनके द्वारा की गयी बहसों को भी अगर 'मैप' (प्रतिचित्रित) कर दिया जाये तो इतिहास में प्राकृतिक विज्ञान का विकास चित्रित होगा। हम एक कदम आगे बढ़े हैं। पर क्या विज्ञान में हुई खोजों को अगर लीनीयर एकरेखीय विकास की जगह उन खोजों को करने वाले वैज्ञानिकों के जीवन को खोलकर व

उनके जीवन के द्वन्द्वों को रखें तो क्या यह प्राकृतिक विज्ञान के विकास को बेहतर चित्रित करेगा? एक महत्वपूर्ण तथ्य जो उभर कर आता है वह यह है कि यह विकास मानवीय प्रतिभाओं के कारण होता है जो कभी-कभी समय के भी आगे बढ़कर तत्कालीन समय में मौजूद समस्याओं से आगे निकल गयीं। निश्चित तौर पर मानवीय प्रतिभाएँ प्राकृतिक विज्ञान के विकास में एक महत्वपूर्ण कारक हैं परन्तु यही एकमात्र कारक नहीं है। हर व्यक्ति का जीवन उसके देश और काल से जुड़ा हुआ है। यह चित्रण मुख्यतः उनके व्यक्तित्व का, उनकी प्रतिभा का चित्रण होगा जो जीवन के तमाम रंगों से भी भरा हुआ है।

डार्विन की खोजी यात्रा, गैलीलियो का अपने जीवन के बड़े हिस्से को आसमान को ताकते हुए बिता देना, यूरेका! यूरेका! कहते सड़क पर चिल्लाते भागते आर्कीमिडिज, ताकतानी द्वारा निरंकुश तानाशाही के कारण जेल में बन्द होकर भी सैनिकों से छुपा कर क्वाण्टम भौतिकी के सूत्र हल करना : कुछ ऐसे ही हुई हैं प्राकृतिक विज्ञान के विकास की यात्रा। हर मौजूदा नज़रिये को चुनौती देते ये वैज्ञानिक अपने-अपने स्पेस-टाइम (दिक् व काल) में दुनिया को नयी नज़र दे रहे थे। डार्विन की नाव की यात्रा ने मनुष्य को खुद से अवगत कराया तो असीम ब्रह्मण्ड को आइन्स्टीन अपनी ऊँगलियों के बीच कलम से लिखे समीकरणों से चित्रित कर रहे थे और उसे अपने 'थॉट एक्सपेरिमेण्ट्स' में जाँच रहे थे। व्लादिमीर फॉक, डिराक, ब्लोखिन्स्तेव, डार्विन, फाइनमैन, स्टीफेन जे. गूल्ड जहाँ शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों के गलियारों से प्रयोग कर रहे थे तो गैलीलियो किलों में, सर्वियुतस कब्रिस्तान में और हमारे आदिम वैज्ञानिक जंगलों में। परन्तु इनके जीवन के समय में पैदा हुए सिद्धान्त उनके समय में ही पैदा हो सकते थे। क्योंकि ये उस समय की ज़रूरत थे। जंगलों में आदि कम्प्यून में रहने वाले आदिम वैज्ञानिक सापेक्षिकता के सिद्धान्त को नहीं खोज सकते थे पर उन्हीं और उनके बाद के वैज्ञानिकों की पीढ़ियों के अर्जित ज्ञान के दम पर ही आइन्स्टीन भी सापेक्षिकता का सिद्धान्त खोज पाये थे। प्रकृति और उसके अंग के तौर पर मनुष्यों के बारे में यह संचित होता ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी कैसे जुड़ता गया?

यह सिर्फ़ यांत्रिक योग नहीं था बल्कि हर नये सिद्धान्त ने पुराने सिद्धान्तों के हिस्से या पूरे सिद्धान्त का निषेध किया और आज भी विज्ञान में 'निषेध का निषेध' जारी है। एक

सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों के सकारात्मकों को अपनाता है और इसी प्रक्रिया में उसके नकारात्मकों का निषेध करता है और इस द्वन्द्व की प्रक्रिया में ही नया सिद्धान्त अस्तित्व में आता है। कोई भी नया सिद्धान्त वास्तव में इसी प्रकार 'निषेध के निषेध' के ज़रिये अस्तित्व में आता है। यह नया सिद्धान्त पुराने किसी सिद्धान्त का विपरीत नहीं होता; बल्कि यह विपरीत सिद्धान्तों के द्वन्द्व के ज़रिये अस्तित्व में आता है।

आदिम मनुष्य की ब्रह्माण्ड की मिथकीय परिकल्पनाओं के आगे ग्रीक दार्शनिकों द्वारा स्थापित अराजकता (केओस) के सिद्धान्त से आरम्भ की अवधारणा तक और प्राक्-नेब्युलर थियरी से बिग बैंग के सिद्धान्त तक और बिग बाउंस से मल्टीवर्स के सिद्धान्त तक, सभी एक-दूसरे का निषेध और साथ ही उत्सादित (सबलेट) करते हुए आगे बढ़े। अगर एक समय विशेष पर ध्यान केन्द्रित करें तो हम पायेंगे कि विज्ञान में कई परिकल्पनाएँ व सिद्धान्त संघर्ष करते हैं और जो भी परिकल्पना सिद्धान्त के रूप में विकसित होती है वह अन्य परिकल्पनाओं का निषेध और उत्सादन करती हैं। प्रतिभावान प्रारूप (इण्टेलिजेण्ट डिज़ाइन) के सिद्धान्त का निषेध करते हुए उद्विकास (इवोल्यूशन) के सिद्धान्त का विकास इसका अच्छा उदाहरण है। लेकिन विज्ञान में यह लगभग हर जगह देखने को मिलता है – आणविक सिद्धान्त के विकास में डाल्टन, रदरफोर्ड, बोर से लेकर श्रोडिंगर और हाइज़नबर्ग की अवधारणाओं का विकास हो या ईथर के सिद्धान्त को कूड़े में फेंककर आगे बढ़ा सापेक्षिकता का सिद्धान्त हो। यानी अगर हमें विज्ञान के विकास को मापना है तो हमें न सिर्फ़ उन वैज्ञानिकों के कार्यों को देखना होगा जिन्होंने प्राकृतिक विज्ञान को आगे बढ़ाया बल्कि उनके महत्त्व पर भी ज़ोर देना होगा जिनकी ग़लत या आंशिक तौर पर ग़लत परिकल्पनाओं के कारण विज्ञान यहाँ तक विकसित हुआ है। हम अब उस मोड़ पर पहुँच गये हैं जहाँ हम यह सवाल पूछ सकते हैं कि विज्ञान के विकास के पीछे कौन से कारक हैं?

प्राकृतिक विज्ञान का विज्ञान क्या है?

इस सवाल का जवाब हम अभी नहीं देंगे बल्कि पहले इस सवाल का जवाब देंगे कि आज तक इस प्रश्न का पूरा जवाब क्यों नहीं मिला? अगर मिला है तो यह प्राकृतिक वैज्ञानिकों के ज़ेहन में क्यों नहीं है? मौजूदा प्राकृतिक विज्ञान पर बात करें तो आजकल तमाम वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और विज्ञान के अधिकचरे ज्ञान के शिकार कई मार्क्सवादियों में विज्ञान के संकट का शोर मचा हुआ है। भौतिकी के पैर 'स्ट्रिंग थियरी' की स्ट्रिंग्स में उलझे हुए हैं तो मोलिक्यूलर जेनेटिक्स भी सन्तृप्तीकरण की ओर जाता प्रतीत हो रहा है। वैज्ञानिकों की जमात "इक्वेशन ही सब कुछ है" का नारा देते हुए सिसिफस की तरह मेहनत करते हुए गोल-गोल घूम रही है। यहाँ यह न समझ लिया जाये कि विज्ञान में कोई भी प्रगति नहीं हो रही है। विज्ञान में परिमाणात्मक प्रगति तो निरन्तर होती रहती है, लेकिन उसमें गुणात्मक छल्लों तभी लग पाती हैं या ऐसी गुणात्मक छल्लों लग भी जायें तो भी उनकी मानवता के लिए

कोई उपयोगिता तभी बन पाती है, जब इसके लिए अनुकूल ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भ मौजूद हो। आज वैज्ञानिकों का भी एक हिस्सा स्वीकार करता है कि एक गतिरोध की स्थिति है। परन्तु यह वैसा गतिरोध है जो प्राकृतिक विज्ञान में बार-बार आते रहे हैं और हर बार छल्लों के साथ विज्ञान दो क़दम आगे बढ़ जाता है।

लेकिन बीसवीं सदी में विशेष तौर पर भौतिकी व प्राकृतिक विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में जो अभूतपूर्व नये खुलासे हुए हैं, उन्होंने एक "संकट" के शोर को बढ़ावा दिया है। निश्चित तौर पर इन तमाम रुकावटों के बाद भी विज्ञान प्रगति करता रहा है और मौजूदा गतिरोध के बावजूद भी इसमें इजाफ़े होते रहे हैं परन्तु कोई भी महत्त्वपूर्ण बदलाव भौतिकी या जीव विज्ञान में नहीं आया है। लेकिन इस गतिरोध को संकट विज्ञान की मौजूदा समझ ने बनाया है। यह समझदारी विज्ञान के बारे में एक अवैज्ञानिक, अनैतिहासिक और ग़लत दार्शनिक समझदारी का परिणाम है। आइन्स्टीन जहाँ निर्धारणवाद का शिकार थे तो हाइजेनबर्ग नवकाण्टीय अज्ञेयवाद व संशयवाद के शिकार थे और आज के दार्शनिक विचलनों, बल्कि बीमारियों के नाम तो इनके समीकरणों जितने ही उलझ गये हैं। पॉपर, कुन, फेयरबैण्ड जैसे विज्ञान के दार्शनिकों का दार्शनिक विमर्श भी संकट के अफीम में धुत्त है और ये नशे की हालत को ही सहज मानवीय गुण बता रहे हैं। हम इनके सिद्धान्तों की आलोचना आगे करेंगे परन्तु अभी बस यह बात समझनी ज़रूरी है कि ग़लत अप्रोच व पद्धति ही वे कारण हैं जिनके चलते विज्ञान के मौजूदा गतिरोध को संकट और विज्ञान के 'अन्त' के रूप में एक 'जश्न' के तौर पर मनाया जा रहा है।

इस ग़लती का प्रमुख कारण यह है कि ज्यादातर वैज्ञानिकों और विज्ञान के दार्शनिकों पर निर्धारणवाद, अज्ञेयवाद, व्यवहारवाद, अनुभववाद, प्रत्यक्षवाद आदि की बुर्जुआ विचारधाराओं का प्रभाव हावी रहा है। और अगर हम इनकी ग़लती को नहीं सुधारेंगे तो हम भी फिर से उन्हीं ग़लतियों को करेंगे जो बीसवीं सदी में हो चुकी हैं, हालाँकि एक नये रूप में और एक नये धरातल पर। तो इन ग़लतियों को कैसे इंगित किया जाये? यह भौतिकी के समीकरणों की परतों को खोलकर ही हो सकता है जिनके नीचे गहन विचारधारात्मक संघर्ष चलता रहा है। आइन्स्टीन और बोर के बीच की बहस, गोडेल और हिल्बर्ट के बीच बहस, ताकतानी व बोरिस हैसेन के बीच बहस, उद्विकास के सिद्धान्त पर चली बहस (चाहे ये अप्रत्यक्ष तौर पर चली हों): इन सब के मूल में विचारधारात्मक व दार्शनिक पहुँच व पद्धतियों का टकराव ही है। इन बहसों में अक्सर एक विचारधारा अपेक्षाकृत सही दृष्टिकोण पेश करती रही है, जबकि दूसरी विचारधारा अज्ञेयवाद या निर्धारणवाद के गर्त में ले जाती है। अपेक्षाकृत सही नज़रिये का प्रतिनिधित्व ताकतानी, सकाता, व्लादिमीर फॉक, बोरिस हैसेन, स्टीफेन जे. गूल्ड व इनके जैसे वैज्ञानिकों की धारा है जिन्होंने द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी पहुँच और पद्धति को अपनाया और उसे प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में लागू करने का प्रयास किया। यह धारा निरन्तर मौजूद है और लगभग हर सवाल पर अपेक्षाकृत सन्तुलित दृष्टिकोण के साथ

अपनी राय रखती रही है। हम इन वैज्ञानिकों व दार्शनिकों के नज़रिये को एक कुतुबनुमा की तरह इस्तेमाल करेंगे और साथ ही इस कुतुबनुमा की असटीकताओं पर भी चर्चा करते चलेंगे।

सबसे पहले एक सही पहुँच और पद्धति पर एक साफ दृष्टिकोण होना ज़रूरी है। हमारी पहुँच व पद्धति द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी होनी चाहिए। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद किसी भी सत्य को अन्तिम व अपरिवर्तनशील नहीं मानता है। यह दुनिया को स्थिर वस्तुओं के समुच्चय के रूप में नहीं बल्कि परस्पर सम्बन्धित और सतत् गतिमान प्रक्रियाओं के रूप में देखता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद मानता है कि प्रकृति और समाज में निरन्तर पुरानी प्रक्रियाएँ समाप्त होती रहती हैं और नयी प्रक्रियाएँ जन्म लेती रहती हैं। प्रकृति स्वयं निरन्तर अस्तित्व में आने और गुजर जाने की एक अन्तहीन प्रक्रिया है। यह पूरी गति वास्तव में एक द्वन्द्व के रूप में होती है। प्रकृति में हर स्तर पर परस्पर विरोधी तत्वों के समुच्चय मिलते हैं। हर स्तर पर अन्तरविरोध होता है। पदार्थ के बिना गति नहीं हो सकती है और गति के बिना पदार्थ नहीं हो सकता है और गति स्वयं एक अन्तरविरोध है। ज्ञान के विकास के क्षेत्र में भी ज्ञात और अज्ञात का द्वन्द्व लगातार मौजूद रहता है और साथ ही यह द्वन्द्व गतिशील भी रहता है। आज जो अज्ञात है, वह कल ज्ञात हो जायेगा लेकिन तब तक एक नये अज्ञात का नया क्षितिज उजागर हो चुका होगा। ज्ञात का लगातार अज्ञात और ज्ञात में टूटना और साथ ही अज्ञात का भी लगातार ज्ञात और अज्ञात में टूटना और उनके बीच का सतत् द्वन्द्व – यही ज्ञान की गति है, यही विज्ञान की गति है। जो पहले से (ए-प्रायरी) इस पहुँच और पद्धति को नहीं अपनायेगा, वह विज्ञान के क्षेत्र में निर्धारणवाद या अज्ञेयवाद के गड्ढे में जाकर गिरेगा। बीसवीं सदी की तमाम दार्शनिक वैज्ञानिक बहसों में हम इस त्रासदी को बार-बार घटित होते हुए देख चुके हैं। महान से महान वैज्ञानिक विज्ञान के बारे में एक सही वैज्ञानिक व द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण न रखने के कारण प्रत्यक्षवाद, अनुभववाद, निर्धारणवाद या फिर संशयवाद, अज्ञेयवाद आदि के गड्ढे में गिरते रहे हैं।

हर वैज्ञानिक की एक निश्चित पहुँच (अप्रोच) होती है जिससे कि वह उसके सामने घटित हुई किसी भी परिघटना के कारणों की पड़ताल करता है। यानी अगर कोई भी परिघटना सामने उपस्थित होती है तो वैज्ञानिक इसी पहुँच के साथ आगे बढ़ते हैं। द्वन्द्वात्मक पहुँच के अनुसार उस परिघटना के पीछे किसी न किसी रूप में कोई अन्तरविरोधपूर्ण गति मौजूद होगी या उसके मूलतत्त्व द्वन्द्वात्मक तौर पर अन्तर्गुन्थित होंगे। जैसे अणु में इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन के बीच द्वन्द्व व इलेक्ट्रॉन की गति में कण तथा तरंग का द्वन्द्व मौजूद होता है जो कि प्रेक्षण द्वारा उभरकर आता है। सामान्य गणित में गुणन और फलन, जोड़ना और घटाना एक दूसरे के द्वन्द्वात्मक विपरीत हैं। किसी परिघटना को जब वैज्ञानिक एप्रायरी (पहले से) द्वन्द्वात्मक होकर अध्ययन करता है तभी वह सही निष्कर्ष पर पहुँच सकता है। वहीं भौतिकवादी पहुँच के अनुसार हम किसी भी परिघटना को भेदते हुए यह मानकर चलते हैं कि यह परिघटना एक ऐसे भौतिक यथार्थ का ही अंग है, जो कि मानवीय चेतना से

स्वतन्त्र अस्तित्वमान है। हम चाहे इस परिघटना के साक्षी बनें या न बनें, हमारी चेतना उसे संज्ञान में ले या न ले, वह मौजूद रहती है। आँखें बन्द कर लेने से दुनिया खत्म नहीं हो जायेगी। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही वह पहुँच व पद्धति होनी चाहिए जिससे कि हम आम तौर पर किसी भी परिघटना की जांच करें। प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में ताकतानी ने इसे लागू करते हुए तीन चरणों का सिद्धान्त (थ्री स्टेज थियरी) दी थी। इस पर भी हम आगे आयेंगे।

हमने पहले से एक सही पहुँच और पद्धति की अनिवार्यता के बारे में यह चर्चा इसलिए की क्योंकि हमारे विचार में इसके अभाव में ही प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में और खास तौर पर आधुनिक भौतिकी को लेकर संकट का शोर मचा हुआ है। निश्चित तौर पर, एक सही पहुँच और पद्धति आसमान से नहीं टपके हैं, बल्कि वे भी मानव व्यवहार के ज़रिये पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचित ज्ञान के तर्कसंगत और वैज्ञानिक सामान्यीकरण की लम्बी, जटिल और संघर्षपूर्ण प्रक्रिया के दौरान विकसित हुए हैं और अभी भी विकसित हो रहे हैं। इस पहुँच और पद्धति के प्रश्न को हम विज्ञान के क्षेत्र में विचारधारा व दर्शन के प्रश्न के तौर पर देख सकते हैं। कई बार ऐसा हुआ है कि विज्ञान प्रकृति के बारे में सत्यों को आनुभविक और प्रायोगिक तौर पर बाद में पुष्ट कर पाया, जबकि दार्शनिकों ने उसके बारे में बिना आनुभविक व प्रायोगिक सूचना के, पहले ही काफी सटीकता के साथ बताया। ऐसा सिर्फ़ उन दार्शनिकों की महानता के कारण नहीं हुआ था। इसका मुख्य कारण यह है कि एक सही पहुँच और पद्धति से लैस दर्शन (जो कि स्वयं सदियों के मानवीय सामाजिक व्यवहार द्वारा संचित ज्ञान के वैज्ञानिक सामान्यीकरण से ही निःसृत होकर पैदा हुआ है) विज्ञान द्वारा आनुभविक और प्रायोगिक पुष्टि के बिना ही प्राकृतिक या सामाजिक यथार्थ के बारे में सही सिम्युलेशन कर सकता है। विज्ञान के क्षेत्र में दर्शन का प्रश्न इसलिए ही महत्वपूर्ण है और यह विज्ञान के अब तक के विकास से नाभिनालबद्ध भी है।

विज्ञान के विकास का त्रिकोण

विचारधारा या दर्शन का प्रश्न और साथ ही मानवीय उपादान का प्रश्न, दोनों ही विज्ञान के विकास में महत्व रखते हैं। परन्तु ये दोनों भी तभी सक्रिय हो पाते हैं जब इन्हें अनुकूल परिस्थितियाँ मिलें। इतिहास के जिस कालखण्ड में प्रतिभा और विचारधारा अपने आप को पाती है, उस सामाजिक परिस्थिति के हिसाब से ही प्राकृतिक विज्ञान विकसित होता है। कई बार वह युगान्तरकारी प्रतिभाओं के द्वारा इन सीमाओं का कुछ अतिक्रमण करते हुए भी दिखता है, लेकिन इस अतिक्रमण की भी एक ऐतिहासिकता होती है। यहाँ इतिहास द्वारा जनित सामाजिक परिस्थितियों से हमारा मतलब आर्थिक विकास, सांस्कृतिक विकास और समाज के बौद्धिक विकास के स्तर से है, दूसरे शब्दों में समाज के कुल भौतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास के स्तर से है। विज्ञान के तमाम निजी व सरकारी शोध के संस्थानों और विश्वविद्यालयों के अन्दर मौजूद सुविधाओं और संस्कृति को भी इसका ही हिस्सा माना जायेगा। प्राकृतिक विज्ञान के विकास क्रम को

समझने के लिए ऐतिहासिक सन्दर्भ, विचारधारा और मानवीय उपादान की भूमिकाओं और सम्बन्धों को समझ कर ही समझा जा सकता है। इन्हीं कारकों के द्वन्द्व में प्रकृति विज्ञान का विकास होता रहा है। इसे विज्ञान के किसी भी क्षेत्र के विकास पर लागू किया जा सकता है। किसी भी समय में मौजूदा ऐतिहासिक परिस्थितियों में विचारधारा की रोशनी में मानवीय प्रतिभाओं ने मानवीय ज्ञान को आगे बढ़ाने का काम किया है। वर्ग अन्तरविरोध के जिस द्वन्द्व से वर्ग समाज का पूरा इतिहास बुना होता है, उसकी ही छाप इतिहास में जड़ित विज्ञान में भी होती है। आज का मौजूदा अन्तरविरोध उत्पादक शक्तियों का उत्पादन सम्बन्धों द्वारा जकड़ लिया जाना है। पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध नयी उदीयमान उत्पादक शक्तियों के पैरों में बेड़ियाँ हैं। इसी तरह यह अन्तरविरोध प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी आता है क्योंकि आज के दौर में विज्ञान पर शोध जिन भी शोध संस्थाओं में हो रहा है वे इसी पूँजीवादी व्यवस्था का हिस्सा हैं। सरकारें तथा तमाम निजी कम्पनियाँ पूँजी की ज़रूरत के हिसाब से ही विज्ञान में खर्च करते हैं और इनमें भी सिर्फ वही विषय उच्च वरीयता पाते हैं जो सबसे ज़्यादा मुनाफ़े के माल को पैदा करे या उसकी प्रक्रिया को सुगम बनाये। निश्चित तौर पर, कई बार व्यक्तिगत प्रतिभाएँ इन संस्थागत सीमाओं के भीतर रहते हुए भी कुछ कमाल कर जाती हैं, लेकिन इससे विज्ञान की पूरी गति और दिशा पर और उसके गतिरोध पर कोई निर्बन्धकारी प्रभाव नहीं पड़ता है। पूँजी की अराजक गति की छाप विज्ञान पर भी होती है। यहाँ भी तमाम शोध मुख्यतः इसी गति के अनुसार होते हैं। अराजक दिशाओं में प्रतिभाएँ विचारधारा की रोशनी के बिना भटकती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण स्पेन देश है जहाँ आर्थिक मंदी के चलते सरकार ने पिछले साल अपने विज्ञान मन्त्रालय को ही ख़त्म कर दिया। यूरोप में लगभग हर सरकार ने प्राकृतिक विज्ञान पर हो रहे खर्च को 60-80 फीसदी कम किया है और यही कारण है कि आज के ऐतिहासिक युग का महानतम वैज्ञानिक प्रयोग (सर्न का हाईड्रॉन कोलाइडर प्रयोग) भी वित्तपोषण के अपर्याप्त होने

के कारण अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ पा रहा है। ख़ैर, इस विषय पर हम आगे विस्तार से बात रखेंगे। इसलिए कोई भी सच्चा प्रकृति विज्ञानी आज अपने आपको व्यापक सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों से काटकर नहीं रख सकता है। वास्तव में, अतीत में भी जो सच्चे मायनों में महान वैज्ञानिक हुए हैं, उन्होंने अपने दौर के सामाजिक-आर्थिक व राजनीतिक संघर्षों में यथासम्भव हिस्सेदारी की है और उनके प्रति अपने सरोकारों को ज़िन्दा रखा है। वास्तव में, जिन समाजों में मानवता की रचनात्मकता और नवोन्मेषकता पर मुनाफ़े की ताकतों द्वारा लगायी गयी पाबन्दियाँ हटा दी गयीं, उन समाजों में विज्ञान ने चमत्कारिक रफ़्तार से तरक्की की। मिसाल के तौर पर, सोवियत संघ में 1920 से लेकर विशेष तौर पर 1960 के दशक के अन्त तक सैद्धान्तिक और प्रायोगिक विज्ञान दोनों के ही क्षेत्रों में अभूतपूर्व विकास हुआ। इस पर हम आगे चर्चा करेंगे।

मौजूदा किशत के अन्त में हम कह सकते हैं कि विज्ञान का मौजूदा संकट दरअसल बुर्जुआ दर्शन का संकट है, जो विज्ञान के विकास को व्याख्यायित करने और उसे आगे विकसित करने के लिए प्रेरणा देने की शक्ति खो चुका है। यह संकट द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी पहुँच और पद्धति को अपनाकर ही दूर किया जा सकता है। सम्पूर्ण मानव इतिहास में प्राकृतिक विज्ञान का विकास ऐतिहासिक परिस्थितियों, विचारधारा और मानवीय उपादान के बीच मौजूद द्वन्द्व को समझकर ही समझा जा सकता है। हम इसी दृष्टिकोण को और पुख़्ता करते हुए मानव इतिहास की पड़ताल करेंगे और उसमें प्राकृतिक विज्ञान के विकास पर नज़र डालेंगे व उनके साथ जुड़ी बहसों पर अपनी राय रखेंगे। इस लेख में हम इतिहास के कालक्रम से ही चलेंगे, पर कुछ खास कालखण्डों पर हम अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे और उस समय की बहसों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और विचारधारात्मक संघर्ष पर विस्तारपूर्वक अपनी बात रखेंगे।

(अगले अंक में जारी)

क्या यह समझने के लिए गहरी अन्तर्दृष्टि की ज़रूरत है कि मनुष्य के विचार, मत और उसकी धारणाएँ – संक्षेप में, उसकी चेतना उसके भौतिक अस्तित्व की अवस्थाओं, उसके सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक जीवन के प्रत्येक परिवर्तन के साथ बदलती हैं?

विचारों का इतिहास इसके सिवा और क्या साबित करता है कि जिस अनुपात में भौतिक उत्पादन में परिवर्तन होता है, उसी अनुपात में बौद्धिक उत्पादन का स्वरूप परिवर्तित होता है? हर युग के प्रभुत्वशील विचार सदा उसके शासक वर्ग के ही विचार रहे हैं।

जब लोग समाज में क्रान्ति ला देने वाले विचारों की बात करते हैं, तब वे केवल इस तथ्य को व्यक्त करते हैं कि पुराने समाज के अन्दर एक नये समाज के तत्व पैदा हो गये हैं और पुराने विचारों का विघटन अस्तित्व की पुरानी अवस्थाओं के विघटन के साथ कदम मिलाकर चलता है।

— **मार्क्स-एंगेल्स** (कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र)

पाकिस्तान का वर्तमान संकट और शासक वर्ग के गहराते अन्तरविरोध

● तपीश

पाकिस्तान एक बार फिर राजनीतिक गतिरोध के दौर से गुजर रहा है। इमरान खान की पार्टी तहरीक-ए-इंसाफ़ और कनाडा से अचानक पाकिस्तान में अवतरित हुए मौलाना ताहिर-उल-कादरी की पार्टी पाकिस्तान अवामी तहरीक के नेतृत्व में प्रदर्शनकारी नवाज़ शरीफ़ सरकार के इस्तीफ़े की माँग को लेकर अगस्त के मध्य से संसद के बाहर डेरा डाले हुए हैं। पाकिस्तानी तालिबान के आतंकी दस्ते सेना के ठिकानों पर हमलावर हैं और सेना उनके खिलाफ़ ऑपरेशन ज़र्ब-ए-अज़ब का संचालन कर रही है। पाकिस्तान इस समय गम्भीर आर्थिक संकटों से घिरा हुआ है। सन 2008 के बाद से ही वहाँ की अर्थव्यवस्था पटरी से उतरी हुई है। असल में पाकिस्तान के वर्तमान संकट के मूल में आर्थिक संकट ही है। ऐसे समयों में शासक वर्ग के विभिन्न धड़े आपस में टकराने लगते हैं और आज पाकिस्तान में यही हो रहा है। बहुधा राजनीतिक विश्लेषक पाकिस्तान की ऐसी छवि प्रस्तुत करते हैं मानो वह भारत और विश्व के लिए आसन्न ख़तरा हो जबकि सच्चाई तो यह है कि पाकिस्तान की सेना और वहाँ के इस्लामिक कट्टरपन्थी सबसे ज्यादा ख़तरा तो वहाँ की आम मेहनतकश आबादी के लिए पैदा कर रहे हैं। भारतीय मीडिया में पाकिस्तान को हरे राक्षस के रूप में चित्रित करने का चलन रहा है और वहाँ की सारी समस्याओं के लिए इस्लामिक कट्टरपन्थ को ज़िम्मेदार मान लिया जाता है। इस तरह उन गहरे सामाजिक-आर्थिक कारकों पर पर्दा डाला जाता है जो वास्तव में इस पूरे खेल का संचालन कर रहे हैं।

पाकिस्तान के वर्तमान संकट को समझने के लिए ज़रूरी है कि हम इसे इसके विकास क्रम में समझने का प्रयास करें। इसके साथ ही साम्राज्यवाद, सेना, इस्लामिक कट्टरपन्थ के अन्तरसम्बन्धों और उन ठोस सामाजिक-आर्थिक आधारों की पड़ताल भी ज़रूरी है जो इन शक्तियों को पाकिस्तान की राजनीति में न सिर्फ़ सक्रिय रखती हैं बल्कि उनके अस्तित्व का औचित्य भी प्रदान करती हैं।

पाठकों को याद होगा कि वर्ष 2013 में नवाज़ शरीफ़ के नेतृत्व में पाकिस्तान मुस्लिम लीग (नवाज़) भारी बहुमत के साथ सत्ता में आयी थी। उस समय राजनीतिक विश्लेषकों ने इसे पाकिस्तान के इतिहास में सबसे सफल और शान्तिपूर्ण सत्ता हस्तान्तरण कहा था। यह वही पार्टी थी जिसकी सरकार का 1999 में जनरल मुशर्रफ़ ने तख़्ता उलट दिया था और फिर कुछ समय के कारावास के बाद सरकार के भूतपूर्व प्रमुख नवाज़ शरीफ़ को सऊदी अरब निर्वासित कर दिया था। सैन्य

शासन के खिलाफ़ नफ़रत से ओतप्रोत और आर्थिक परेशानियों से आजिज़ जनता को 2013 की सरकार से काफ़ी उम्मीदें थीं। उसी समय इमरान ख़ान की पार्टी तहरीक-ए-इंसाफ़ को ख़ैबर-पख़्तूनख़्वा में जमाते-इस्लामी के सहयोग से प्रादेशिक सरकार बनाने में सफलता मिली। उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान का यह इलाका तालिबान का गढ़ है और इमरान ने चुनावी वायदा किया था कि सरकार में आने को बाद वे अमेरिका द्वारा प्रायोजित आतंक के खिलाफ़ युद्ध से पाकिस्तान को अलग कर लेंगे।

चुनाव के दो महीने बीतते-बीतते पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था डाँवाडोल होने लगी। बढ़ती ग़रीबी, महँगाई, बेरोज़गारी और बिजली, पेट्रोल तथा गैस की बढ़ती कीमतों के कारण नयी सरकार जल्दी ही लोकप्रियता खोने लगी। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के गहराते अन्तरविरोध इसी रूप में सामने आते हैं और किसी नवाज़ शरीफ़ या किसी सैन्य तन्त्र की परवाह किये बिना अपना प्रभाव दिखाते हैं। हालाँकि स्वयं नवाज़ शरीफ़ भी इस हकीकत को अच्छी तरह से समझते हैं कि पूँजीवादी तन्त्र के रहते इसके सिवा और कुछ सम्भव नहीं है। सत्ता सँभालने के कुछ ही महीनों बाद सरकार को एक और संकट का सामना करना पड़ा। उसके और पाकिस्तानी सैन्य तन्त्र के बीच तीन अहम मुद्दों पर अन्तरविरोध पैदा हुए। पहला मसला विदेश नीति से जुड़ा हुआ है। नवाज़ शरीफ़ का इस बात पर जोर था कि भारत के साथ पाकिस्तान के सम्बन्धों को आपसी बातचीत तथा व्यापारिक साझेदारी को बढ़ावा देकर सामान्य बनाया जाये जबकि सेना भारत के साथ तनाव बरकरार रखना चाहती थी। दूसरा मुद्दा पाकिस्तानी तालिबान के विरुद्ध सैन्य कार्रवाई को लेकर था। सेना का एक बड़ा हिस्सा उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान को वज़ीरिस्तान और ख़ैबर-पख़्तूनख़्वा में सैन्य कार्रवाई पर जोर दे रहा था जबकि सरकार बातचीत के ज़रिये समाधान निकालना चाहती थी। यहाँ बताते चलें कि पाकिस्तानी सेना जहाँ एक ओर अफ़ग़ानी तालिबान का समर्थन करती है वहीं वह पाकिस्तानी तालिबान के सख़्त खिलाफ़ है। पिछले कुछ महीनों में ही पाकिस्तानी तालिबान ने नौसेना और सेना के कराची, रावलपिण्डी सहित दो अन्य महत्वपूर्ण ठिकानों को अपने हमलों का निशाना बनाया है। अन्तरविरोध का तीसरा बिन्दु परवेज़ मुशर्रफ़ का मसला था। सरकार मुशर्रफ़ के खिलाफ़ मुक़दमा चलाकर उसे जेल भेजना चाहती थी ताकि एक नज़ीर उपस्थित हो सके। जबकि सेना का मत था कि उसे चुपचाप देश छोड़कर जाने दिया जाय। संक्षेप में कहें तो नागरिक

सरकार जहाँ एक ओर अपनी स्वतन्त्रता पर बल दे रही थी, वहीं दूसरी ओर पाकिस्तानी सेना-तन्त्र राजनीतिक हस्तक्षेप के अपने जन्मना अधिकार पर अड़ा हुआ था। इसके मूल कारणों की संक्षिप्त पड़ताल हम आगे करेंगे।

वर्तमान संकट ने उस समय रूपाकार ग्रहण करना शुरू किया जब सेना ने उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान के इलाकों में ऑपरेशन जर्ब-ए-अजब शुरू किया। पहले यहाँ हवाई गोलाबारी की गयी और फिर पैदल सेना और टैंकों को ज़मीनी कार्रवाई में उतार दिया। हाल ही में सेना ने बताया है कि उस ऑपरेशन के दौरान अब तक 900 आतंकी मारे जा चुके हैं। सैन्य कार्रवाई शुरू होते ही क़ादरी ने खुलकर इन हमलों की वकालत की और सेना के समर्थन में हर शुक्रवार रैली आयोजित करने की घोषणा कर डाली। पाकिस्तान अवामी तहरीक़ के क़ादरी सूफ़ी इस्लाम की एक हल्की कट्टरपन्थी धारा के विचारक हैं। इनका आधार मुख्यतः निम्न-मध्यवर्ग में है। ये जनाब वैसे तो इंक़लाब की बात करते हैं लेकिन वास्तव में इनका राजनीतिक एजेंडा लोकरंजकतावाद की चाशनी में लिपटा हुआ प्रतिक्रियावाद ही है। पाकिस्तान की राजनीति में इनका उभार एक हालिया परिघटना है। उधर इमरान ख़ान, जो मध्यवर्ग और कुछ हद तक उच्च-मध्यवर्ग में लोकप्रिय हैं, के लिए यह सम्भव न था कि वे सेना के इस ऑपरेशन का खुला विरोध करते। इसलिए उन्होंने सरकार पर दबाव बनाने के मक़सद से चुनाव के 14 महीनों बाद बूथ रिगिंग का आरोप लगाते हुए नवाज़ शरीफ़ सरकार के इस्तीफ़े की माँग की। उन्होंने नवाज़ शरीफ़ सरकार के समक्ष राष्ट्रीय सरकार के गठन या फिर चुनाव में जाने का विकल्प भी रखा है। यदि हम उत्तर-पश्चिमी प्रान्त की राजनीति और वहाँ इमरान की पैठ तथा उनकी चुनावी घोषणाओं को ध्यान में रखें तो उनका यह क़दम स्वाभाविक जान पड़ता है। कुछ ही समय की तैयारी के बाद इमरान ने आज़ादी मार्च नाम से लाहौर से इस्लामाबाद तक मार्च की घोषणा की। इस तथाकथित आज़ादी मार्च को आयोजित करने के पीछे एक और कारण भी था। इमरान की पार्टी तहरीक़-ए-इसाफ़ की सरकार भी उसी प्रकार और उन्हीं कारणों से ख़ैबर-पख़ूनख़्वा की जनता के बीच अलोकप्रिय हो रही थी जिस तरह केन्द्र की नवाज़ शरीफ़ सरकार पाकिस्तानी जनता के बीच अपना विश्वास खो रही थी। इसलिए इमरान के लिए ज़रूरी हो गया था कि वह अपनी पार्टी की सरकार की असफलताओं से जनता का ध्यान हटाने के लिए कोई नया मुद्दा खड़ा करें।

इस तरह हम देख सकते हैं कि सेना, तहरीक़-ए-इसाफ़ और क़ादरी तथा पाकिस्तान की जनता का एक छोटा सा मध्यमवर्गीय हिस्सा अपनी-अपनी वजहों से पाकिस्तानी सरकार के खिलाफ़ उतर पड़ा है। यहाँ पाकिस्तानी जनता के आर्थिक हालातों पर एक नज़र डालना ज़रूरी है। 2008 की शुरुआत से ही पाकिस्तान के आर्थिक हालात बेहद ख़राब हैं। उस समय पाकिस्तान की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को दिवालिया होने से बचाने के लिए विश्व मुद्रा कोष (आईएमएफ़) से पाँच प्रतिशत की दर पर 7.9 अरब डॉलर का कर्ज़ मिला था। इस कर्ज़ की अदायगी के लिए उस समय सरकार ने पाकिस्तानी जनता पर 100 अरब रुपये के नये कर थोप दिये थे। सन् 2013 तक

पहुँचते-पहुँचते एक बार फिर पाकिस्तानी अर्थतन्त्र में वैसे ही हालात पैदा हो गये। जुलाई 2013 में पाकिस्तान का मुद्रा भण्डार 5.5 अरब डॉलर तक गिर गया था। इससे केवल पाँच सप्ताह का आयात बिल चुकाया जा सकता था। सरकार ने एक बार फिर आईएमएफ़ से 6.7 अरब डॉलर का कर्ज़ लिया। आईएमएफ़ से मिलने वाले इन ऋणों की शर्तें काफी कड़ी थीं। मसलन सरकार को बजट घाटा 2012-13 के 8.8 प्रतिशत से घटाकर 3 वर्षों के भीतर 4 प्रतिशत तक लाना था। इसके लिए दो तरीक़े अपनाये गये: 1) जनता पर नये करों का बोझ लादकर, 2) सामाजिक सुरक्षा, सार्वजनिक कल्याण तथा जनता को मिलने वाली हर किस्म की सरकारी मदद में भारी कटौती करके। इस नीति का सीधा परिणाम बढ़ती महँगाई के रूप में सामने आया। यह भी ग़ौर करने की बात है 2007 से 2013 के बीच पाकिस्तानी रुपये का 40 प्रतिशत अवमूल्यन भी हुआ। मज़ेदार तथ्य यह है कि सरकार ने कर्ज़ अदायगी के लिए कॉरपोरेट टैक्स या व्यापारी वर्ग की आमदनी पर टैक्स लगाने से साफ़ इन्कार कर दिया। उसने पाकिस्तान के सबसे शक्तिशाली पूँजीपति घरानों को सरकार की तरफ़ से मिलने वाली 239 अरब रुपये की टैक्स छूटों को वापस लेने से भी साफ़ इन्कार कर दिया। कृषि प्रधान देश होने के बावजूद पाकिस्तान को अपनी ज़रूरत के खाद्यान का एक बड़ा हिस्सा आयात करना पड़ता है। पिछले वर्ष के मुक़ाबले इस वर्ष कृषि की विकास दर में गिरावट भी आयी है। यह 2.9 प्रतिशत से 2.1 प्रतिशत पहुँच गयी। कृषि पाकिस्तान के सकल घरेलू उत्पाद में 25 प्रतिशत का योगदान करती है और 45.7 प्रतिशत आबादी को रोज़गार देती है। ख़राब पैदावार का सीधा असर महँगी होती खाद्य सामग्री के रूप में सामने आता है। औद्योगिक उत्पादन की हालत भी काफी ख़स्ता है और मज़दूरों को बेहद ख़राब परिस्थितियों में काम करने को मजबूर होना पड़ता है। पाकिस्तानी उद्योग में कुल श्रमिक आबादी का 20.7 प्रतिशत हिस्सा काम में लगा है। पाकिस्तान के 5 करोड़ लोग ग़रीबी रेखा के नीचे गुज़र-बसर कर रहे हैं और करीब 3.5 करोड़ लोग कुपोषित हैं। पाकिस्तान के श्रम बाज़ार में हर साल 8 लाख युवा आबादी जुड़ जाती है। सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़ बेरोज़गारी की दर 6.5 प्रतिशत है। शहरों में यह जहाँ 10.1 प्रतिशत है तो गाँवों में 5 प्रतिशत के स्तर पर बनी हुई है। यहाँ यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि सरकार अर्द्ध-बेरोज़गारों को इस गिनती से अलग रखती है। अतः वास्तविक बेरोज़गारी की दर सरकारी आँकड़ों से काफी अधिक है। पाठक कल्पना कर सकते हैं कि पाकिस्तान का शासक वर्ग ऐसी परिस्थितियों से घिरा है जहाँ जनता का भीतर ही भीतर उबलता आक्रोश और कंगाली के कगार पर खड़ी अर्थव्यवस्था को लगने वाला एक हल्का सा झटका भी उसके अस्तित्व को समाप्त कर सकता है। यही वजह है कि पाकिस्तानी शासक अपनी डूबती अर्थव्यवस्था की ऋण-आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेकते हैं। इसके साथ ही साथ वे आम जनता के दबे हुए आक्रोश को भारत-विरोधी युद्धोन्माद या फिर धार्मिक उन्माद में बदलकर अपनी जान बचाने की कोशिश करते हैं। यह रणनीति अल्पकालिक तौर पर कुछ कारगर होते हुए भी

दीर्घकालिक नज़रिये से आत्मघाती है।

हमने पहले बताया था कि पाकिस्तान का सैन्य तन्त्र नागरिक सरकार के मामलों में हस्तक्षेप करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। यँ तो किसी भी वर्ग विभाजित समाज में राज्यसत्ता दमन का उपकरण हुआ करती है, लेकिन बुर्जुआ लोकतन्त्र में सेना और नागरिक सरकार के बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा भी होती है और केवल आपातकालीन परिस्थितियों में ही कोई बुर्जुआ लोकतन्त्र अपने जनवाद के लबादे को खूँटी पर टाँग कर अपने वास्तविक सार को प्रकट करता है और नग्न दमन का रास्ता अपनाता है। पाकिस्तान का सैन्य तन्त्र इस आम नियम से कुछ इतर व्यवहार करता नज़र आता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पाकिस्तानी पूँजीवाद विश्व-रंगमंच पर बहुत देर से और बेहद कमज़ोर उत्पादक शक्तियों के साथ एक अपेक्षाकृत उन्नत सैन्य तन्त्र को लिए हुए जिस विशिष्ट भू-राजनीतिक परिदृश्य पर उपस्थित हुआ वहाँ विकास का इससे भिन्न कोई अन्य मार्ग मौजूद न था। 1947 के समय पाकिस्तान का पूँजीपति वर्ग बेहद पिछड़ा और कमज़ोर था। उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह अपने बूते प्रारम्भिक पूँजी निवेश करके अपना विस्तार करता। वह प्रगतिशील जनवादी तरीके से पूँजीवाद का विकास कर ही नहीं सकता था। उसके पास साम्राज्यवाद की आर्थिक-सामरिक-वैज्ञानिक और तकनीकी मदद थी और एक सेना थी जहाँ से उसे अपनी विकास यात्रा को शुरू करना था। अपनी इस जन्मना विवशता के चलते पाकिस्तान आज तक अमेरिकी साम्राज्यवाद पर निर्भर है।

पाकिस्तान में पूँजीवादी विकास की दिशा कुछ इस तरह रही कि सेना के अधिकारियों का एक बड़ा तबका स्वयं पूँजीपतियों में तब्दील हो गया। इसका अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि आज सेना के मुट्ठी भर अधिकारी पाकिस्तान के सकल घरेलू उत्पाद का 7 फीसदी हिस्सा नियंत्रित करते हैं। पाकिस्तान के एक-तिहाई भारी उद्योग का स्वामित्व सेना के पास है। सेना 11.58 लाख हेक्टेयर भूमि की स्वामी है। आज सेना पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में मौजूद है। गौरतलब है कि ब्रिटिश काल से ही सेना के अधिकारियों को भूमि-दान की परम्परा थी। पाकिस्तान की स्थापना के बाद भी यह प्रथा जारी रही। अयूब खान के समय में सेना के अधिकारियों को उद्योग, अर्थव्यवस्था और वित्त व्यवस्था में महत्वपूर्ण पद सौंपने की व्यवस्था शुरू हुई। यहाँ से बढ़ते हुए सेना के अधिकारियों ने स्वयं को अर्थव्यवस्था के हर क्षेत्र में स्थापित कर लिया। इस तरह पाकिस्तान में एक सैन्य-कुलीन तन्त्र अस्तित्व में आया जिसके पास जबर्दस्त आर्थिक शक्तिमत्ता है और वह सामरिक शक्ति का भी संचालन करता है। यह एक राजनीतिक चेतनासम्पन्न वर्ग है जो जानता है कि नग्न सैन्य तानाशाही दीर्घकाल में उसके लिए घातक है। लेकिन जब कभी नागरिक शासन उसकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरता या फिर अपने राजनीतिक संकटों का समाधान नहीं ढूँढ़ पाता तो ऐसे में वह स्वयं ही आगे बढ़कर शासन की बागडोर सँभाल लेता है और इस तरह पूँजी के शासन की रक्षा करता है। यही वजह है कि पाकिस्तानी सेना ने स्वयं को कभी भी लोकतन्त्र के विकल्प के रूप में प्रस्तुत नहीं किया। उसने हमेशा ही अपने आप को

लोकतन्त्र का रक्षक बतलाया और अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर नागरिक सरकारों को सत्ता-हस्तान्तरण भी किया।

आइये अब पाकिस्तान की राजनीति में धार्मिक कट्टरपन्थी समूहों की भूमिका पर भी एक नज़र डाली जाये। इस परिघटना को समझने के लिए थोड़ा सा इतिहास में जाना ज़रूरी है। इस्लामिक कट्टरपन्थ का उभार हमारे समकालीन इतिहास की परिघटना है। 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ अपने कारणों से पूँजीवादी राह की ओर अग्रसर हुआ। जल्द ही वह एक साम्राज्यवादी शक्ति में तब्दील हो गया। दुनिया में दो परस्पर विरोधी साम्राज्यवादी शिविर अस्तित्व में आये। एक का नेतृत्व अमेरिका कर रहा था तो दूसरे का नेतृत्व रूस के पास था। 1978 में अफ़गानिस्तान में पीपुल पार्टी और बैनर पार्टी सत्ता में आयी। ये अपनेआप को मार्क्सवादी-लेनिनवादी मानते थे। इनके सत्ता में आते ही अमेरिकी साम्राज्यवादी सकते में आ गये और अफ़गानिस्तान की वामपन्थी सरकार के खिलाफ़ उन्होंने वहाँ इस्लामिक कट्टरपन्थियों को हथियारबन्द संघर्ष के लिए उकसाना शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप अफ़गानिस्तान के भीतर गृहयुद्ध की स्थिति हो गयी। इस मौके का फ़ायदा उठाकर 1979 में सोवियत साम्राज्यवाद ने सैन्य हस्तक्षेप किया और 30,000 की फ़ौज अफ़गानिस्तान में उतार दी गयी। ठीक इन्हीं वर्षों में अमेरिकी साम्राज्यवाद को एक और धक्का लगा जब ईरान में इस्लामिक क्रान्ति के बाद अमेरिका के पिटू शाह को सत्ता से उखाड़ फेंका गया।

विश्व शक्ति-सन्तुलन में हुए इन परिवर्तनों से चिन्तित अमेरिकी साम्राज्यवाद ने अफ़गानिस्तान में अपने प्रतिद्वन्दी का मुकाबला करने के लिए इस्लामिक कट्टरपन्थ को भड़काकर परोक्ष सैन्य कार्रवाई की नीति अपनायी। पाकिस्तान के सैनिक तानाशाह जियाउल हक़ की मदद से छेड़ी गयी इस्लामीकरण की इस मुहिम के तहत “इस्लाम की रक्षा” का नारा उछाला गया और पूरी दुनिया में प्रचारित किया गया। पाकिस्तान की मदद से अमेरिका ने मुजाहिदीनों के पहले दस्ते तैयार किये। इसमें पाकिस्तानी खुफ़िया एजेंसी आईएसआई का जमकर इस्तेमाल किया गया। पूरे पाकिस्तान में मदरसों का ताना-बाना खड़ा किया गया और कट्टरपन्थी मुल्लाओं की तनख़्वाहों का भुगतान अमेरिका की सीआईए ने किया। हालाँकि इन आतंकी दस्तों और इस्लामिक कट्टरपन्थियों को अफ़गानिस्तान युद्ध के लिए तैयार किया जा रहा था, लेकिन इसके कारण स्वयं पाकिस्तान के भीतर इस्लामिक कट्टरपन्थ तेज़ी से फैला। पाकिस्तान में पहले से ही मौजूद देवबन्दियों की कट्टरपन्थी धारा ने इस काम में बढ़चढ़कर हिस्सा लिया। इस तरह हम पाते हैं कि दुनिया का सबसे महान धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र होने का दावा करने वाले मुल्क अमेरिका ने इस्लामिक आतंकवाद के संगठित तन्त्र को खड़ा करने में सबसे बड़ी भूमिका अदा की।

हालात में 1989 ने एक नया मोड़ लिया जब सोवियत सेनाएँ अफ़गानिस्तान को छोड़कर वापस लौट गयीं। इसके बाद अफ़गानिस्तान में अमेरिका द्वारा पाले-पोसे गये मुजाहिदीन वहाँ से छिटककर दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में फैल गये। गौरतलब है कि यही वह दौर था जब कश्मीर में भारतीय राज्य की वायदाख़िलाफ़ी से तंग आकर कश्मीरी जनता में पनपे

व्यापक असन्तोष का फायदा उठाकर पाकिस्तान ने वहाँ जेहादी दस्ते भेजने शुरू किये और इस तरह कश्मीर में आतंकवाद का दौर शुरू हुआ। मुजाहिदीनों का जो हिस्सा पाकिस्तानी मदरसों में पला-बढ़ा उसी से तालिबान का जन्म हुआ। अल-कायदा और ओसामा बिन लादेन भी अमेरिका द्वारा पाकिस्तान की मदद से अफ़गानिस्तान में सोवियत संघ के खिलाफ़ जेहाद के दौरान पैदा हुए भस्मासुर थे जिन्होंने बाद में अपने आका को ही अपने निशाने पर लिया।

घटनाओं ने एक बार फिर नाटकीय मोड़ लिया जब 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका के विश्व व्यापार केन्द्र की इमारत पर हमला हुआ जिसके बारे में अमेरिका का दावा था कि यह हमला अल-कायदा ने किया, हालाँकि अल-कायदा ने कभी इस हमले की ज़िम्मेदारी नहीं ली। लेकिन इसके साथ ही अमेरिका की आतंकवादियों के साथ मिलकर युद्ध करने की नीति का स्थान 'आतंक के खिलाफ़ युद्ध' ने ले लिया। साम्राज्यवाद पर अपनी निर्भरता के चलते पाकिस्तान को आतंक के खिलाफ़ अमेरिका के युद्ध का न चाहते हुए भी अमेरिका का साथ देना पड़ा। अब पाकिस्तानी सेना की मजबूरी थी वो अपनी सीमाओं के भीतर आतंकियों के तन्त्र को निशाना बनाये। इसके कारण पाकिस्तानी राजनीति में कई बदलाव आये। सबसे पहले तो इसके कारण पाकिस्तानी तालिबान और सेना के बीच दुश्मनाना सम्बन्ध पैदा हुए। पाकिस्तानी तालिबान द्वारा सेना के ठिकानों पर किये गये हालिया हमले इसी का नतीजा हैं। दूसरे, सेना और देवबन्दियों के बीच पुरानी निकटता में दरार पैदा हुई। पाकिस्तान की राजनीति में सेना देवबन्दियों का दोहरा इस्तेमाल करती रही है। एक ओर तो वे भारत के खिलाफ़ युद्धोन्माद भड़काने में सेना की मदद किया करते थे तो दूसरी ओर अपने ही देश की नागरिक सरकार के खिलाफ़ दबाव बनाने के लिए जनान्दोलनों को भी संगठित करते थे। लेकिन बदले हुए मौजूदा हालातों में देवबन्दियों द्वारा खाली की गयी जगह की भरपाई

इमरान और क़ादरी की पार्टियाँ कर रही हैं। हालाँकि यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि ये पार्टियाँ पाकिस्तान में मध्यवर्ग के बढ़ते प्रभाव की स्वाभाविक राजनीतिक अभिव्यक्तियाँ भी हैं।

बहरहाल, अभी हालात यह हैं कि 14 अगस्त को शुरू हुआ गतिरोध इस लेख के लिखे जाने तक बरकरार था। तहरीक-ए-इंसाफ़ को छोड़ दिया जाये तो सम्पूर्ण विपक्ष सरकार के साथ इस मुद्दे पर एकजुट होकर दृढ़ता के साथ खड़ा है। उन्होंने नवाज़ शरीफ़ के इस्तीफ़े की माँग को सिरे से खारिज कर दिया है। सेना पूरे मसले पर क़रीबी नज़र रखे हुए है। अपने पुराने अनुभवों से सबक लेते हुए तथा पाकिस्तानी जनता के बीच सैन्य शासन की अलोकप्रियता को देखते हुए वह अभी सीधे हस्तक्षेप से बच रही है और घटनाओं को परोक्ष रूप से प्रभावित करने की कोशिशों में लगी हुई है। यदि यह गतिरोध नहीं सुलझता है तो इस बात सम्भावना अधिक है कि नवाज़ शरीफ़ राष्ट्रीय सरकार की बजाय चुनाव में जाना पसन्द करेंगे।

शायद पाठकों के लिए अब कल्पना करना सम्भव हो सके कि पाकिस्तान की जनता किन भीषण परिस्थितियों का शिकार है। एक ओर वह आर्थिक संकटों से जूझ रही है तो दूसरी ओर कट्टरपंथियों और आतंकियों का दंश भी बर्दाश्त कर रही है। वह अपने सैन्य तन्त्र के जुल्मों को तो बर्दाश्त करती रही है, अब उसे अमेरिकी हमलों का भी निशाना बनाया जा रहा है। आतंक के खिलाफ़ युद्ध के पिछले 13 वर्षों की आर्थिक लागत 102 अरब डॉलर है। यह रक़म पाकिस्तान के कुल विदेशी क़र्ज़ के बराबर है। एक बात स्पष्ट है कि पाकिस्तानी जनता के जीवन में तब तक कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं होने वाला है जब तक कि वह स्वयं अपने समाज के भीतर से नयी परिवर्तनकामी शक्तियों को संगठित कर वर्तमान पूँजीपरस्त जनविरोधी तन्त्र को ही नष्ट करने और एक नये समतामूलक समाज को बनाने की दिशा में आगे नहीं बढ़ती।

भारत में वॉलमार्ट

(पृष्ठ 63 से आगे)

जब कि खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी मिल गयी है तब तो वॉलमार्ट जैसी कम्पनियाँ जमकर निवेश करेंगी और कर रही हैं। वॉलमार्ट अब तक 64 नामों से 27 देशों में मौजूद है। यह अमेरिकी कम्पनी खुदरा क्षेत्र में सबसे बड़ा व्यापारी है। इसके करीब 3600 से ज़्यादा स्टोर अमेरिका में ही मौजूद हैं वहीं इसके 1500 के करीब स्टोर चीन, कोरिया, यूके, जर्मनी और कनाडा में हैं। हर देश में इसके 'विकास' का जो कारण रहता है वह है कम दाम में सामग्रियों की बिक्री और अपने कर्मचारियों का बुरी तरह शोषण। तमाम देशों में इसके निवेश का परिणाम हो रहा है वहाँ के छोटे व्यापारियों, उद्यमियों की तबाही। आगे आने वाले समय में भारत में भी यही स्थिति होगी। यही पूँजीवाद की नैसर्गिक परिणति है। बड़ी पूँजी छोटी पूँजी को तबाह करेगी ही और छोटे व्यापारियों, दुकानदारों के एक बड़े हिस्से को बर्बाद कर सर्वहारा की कतार में लाकर खड़ा कर देगी।

ऐसी स्थिति में क्या हमें छोटी पूँजी को बचाने की कवायद में लग जाना चाहिए जैसा तमाम चुनावी वामपन्थी पार्टियाँ कर रही हैं। नहीं, यह इतिहास के पहिये को पीछे घुमाने की कोशिश होगी और कुछ नहीं। ये पार्टियाँ छोटी पूँजी को बचाने की कवायद में इसलिए लगी रहती हैं कि पूँजीवाद की विध्वंसक रफ़्तार को कम किया जा सके; क्योंकि इनके पास पूँजीवाद का कोई विकल्प नहीं है। खुदरा क्षेत्र में भी विदेशी पूँजी के आने के साथ छोटी पूँजी की तबाही और तेज़ होगी और निम्न पूँजीपति आबादी का एक बड़ा हिस्सा सर्वहारा की कतारों में आकर खड़ा होगा। समाज में बेरोज़गारी बढ़ेगी। ऐसी स्थिति में लोगों के बीच व्यवस्था के प्रति असन्तोष व गुस्सा बढ़ेगा और हमें उनके बीच क्रान्तिकारी प्रचार करना होगा क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था की इस चौहद्दी के भीतर निम्न पूँजीपति वर्ग बचा नहीं रह सकता। इस तबाही को रोकने का एक ही तरीका है इस पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंकना। इस एकमात्र विकल्प को टालने के लिए जितने भी तरीक़े तात्कालिक राहत के लिए अपनाये जायें उससे जनता का दुखदर्द और बढ़ता ही जायेगा।

यूक्रेन विवाद के निहितार्थ

• विराट

बाज़ार और मुनाफ़े के लिए विभिन्न साम्राज्यवादी इजारेदारियों के बीच गलाकाटू प्रतिस्पर्धा यानी लूट की होड़ में अक्वल रहने की खातिर तरकश का हरसम्भव तीर इस्तेमाल करने का सिलसिला काफी लम्बा है। इसी श्रृंखला के रूप में हम इस समय यूक्रेन विवाद से रूबरू हैं। जहाँ एक तरफ़ अमेरिका और यूरोपीय संघ अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए यूक्रेन के “उग्र राष्ट्रवादियों” द्वारा सरकार के तख़्तापलट की हिमायत कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर रूस भी यूक्रेन में पश्चिमी घुसपैठ को नाकाम करने के हरसम्भव प्रयास कर रहा है। हर तरफ़ से विरोधी शब्दबाणों की वर्षा बदनस्तूर जारी है। अमेरिका रूस को एकतरफ़ा प्रतिबन्ध और व्यापार प्रतिबन्ध की घुड़की दे रहा है तो रूस भी उसे जवाबी प्रतिबन्ध की धमकी दे रहा है। यूरोपीय संघ ने रूस पर कुछ आर्थिक प्रतिबन्ध लगाये तो रूस ने भी पलटकर उस पर प्रतिबन्ध लगा दिये। इसने पश्चिमी साम्राज्यवादियों को अवाक कर दिया।

बहरहाल, यूक्रेन के आन्तरिक अन्तरविरोधों का फ़ायदा उठाकर साम्राज्यवादी घुसपैठ की कोशिश का वस्तुपरक मूल्यांकन यूक्रेन की समसामयिक आर्थिकी एवं फासीवादी ध्रुवीकरण में निहित है। यूक्रेन की आर्थिकी फ़िलहाल ख़स्ताहाल है। उसे डूबने से बचने के लिए 35 बिलियन डॉलर की दरकार है और 13 बिलियन डॉलर मौजूदा वर्ष की क़र्ज़ अदायगी के लिए उसे ज़रूरत है। रूस को गैस बिलों का भारी भुगतान भी बाकी है। इस डूबते जहाज के समक्ष दो विकल्प मौजूद थे। पहला विकल्प यूरोपीय संघ-अमेरिका-अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा प्रस्तुत किया गया। यूरोपीय संघ ने यूक्रेन के समक्ष यूरोपीय संघ में शामिल होने के लिए ‘ट्रेड डील’ प्रस्तुत की। यूक्रेन के वित्त मन्त्री की अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के अधिकारियों से मुलाकात के पश्चात दो शर्तों पर क़र्ज़ देना तय हुआ, जिसमें यूक्रेनियन मुद्रा का अवमूल्यन व गैस तथा उर्जा की सब्सिडी में कटौती की शर्तें शामिल थी। दूसरा विकल्प रूस द्वारा प्रस्तुत था जिसके तहत यूक्रेन को 15 बिलियन डॉलर का क़र्ज़ व बेहद ज़रूरी गैस आपूर्ति रियायती दरों पर मुहैया करवाने के प्रस्ताव थे। राष्ट्रपति विक्टर यानुकोविच ने रूसी प्रस्ताव स्वीकृत किया क्योंकि यूरोपीय संघ का प्रस्ताव पहले से दरिद्र यूक्रेन पर अतिमितोपभोग थोपने वाला था। इस मंजूरी के विरोध में 22 जनवरी को राजधानी कीव (पश्चिम यूक्रेन) में फासीवादियों के उग्र प्रदर्शन भड़क उठे। उग्र प्रदर्शनों में जगह ख़जगह आगजनी की घटनाएँ एवं कुछ पुलिसवालों समेत 100 से अधिक लोगों की हत्या को अंजाम दिया गया। सम्पूर्ण घटनाक्रम

का ठीकरा राष्ट्रपति विक्टर यानुकोविच के सर फूटा तथा संसद द्वारा महाभियोग चलाकर उन्हें पद से अपदस्थ कर वहाँ से भागने के लिए मजबूर किया गया और आनन-फ़ानन में कार्यकारी राष्ट्रपति के तौर पर अलेक्जेंडर तुर्चिनोव की नियुक्ति की गयी। हालाँकि यानुकोविच सरकार भी अपने भूतपूर्व गणतन्त्रों की तरह अपनी लोकप्रियता खो चुकी थी, गैरलोकतांत्रिक तथा सर से पांव तक भ्रष्टाचार में लिथड़ी हुई थी।

गौरतलब है कि राष्ट्रपति के अपदस्थ करने के पश्चात जो नयी सरकार अस्तित्व में आयी है वो पश्चिम विश्व की हिमायत करने वाली बुर्जुआ सरकार है जिसमें धुर दक्षिणपन्थी फासीवादी पार्टी ‘स्वोबोदा’ के मन्त्री शामिल हैं जिसका भरण-पोषण अमेरिका व यूरोपीय संघ अपनी हितापूर्ति के लिए करते हैं। यूक्रेन की भौगोलिक स्थिति के हिसाब से रूसी भाषी अल्पसंख्यक मुख्यतः दक्षिण और पूर्वी यूक्रेन जिसमें अर्द्धस्वायत्त राज्य क्रीमिया भी पड़ता है, रहते हैं, यूक्रेन का नव-फासीवादी समूह ‘स्वोबोदा’ रूसी भाषी अल्पसंख्यकों को अपनी राजनीतिक हितापूर्ति के लिए लगातार निशाना बनाता है। यूक्रेनियन संसद द्वारा रूसी भाषा को प्रशासनिक भाषा की मान्यता के क़ानून को हटाने के प्रस्ताव को राष्ट्रपति द्वारा अस्वीकृत किये जाने पर भी इन्होंने राजधानी कीव में प्रदर्शन किया था। छद्म फरवरी को यूरोपीय संघ के विदेशी मामलों के उच्च प्रतिनिधि कैथरीन एस्थन और एस्तोनिया के विदेश मन्त्री उर्मस पैट के बीच टेप की गयी बातचीत के सामने आने पर यह खुलासा हुआ कि तमाम हिंसक घटनाओं को नये गठबन्धन व नव-नाज़ी समूहों के भाड़े के टट्टुओं ने अंजाम दिया था।

26 फरवरी 2014 को हथियारबन्द रूस समर्थकों ने यूक्रेन के क्रीमिया प्रायद्वीप में संसद और सरकारी इमारतों पर को कब्ज़ा कर लिया। रूसी सैनिकों ने क्रीमिया के हवाई अड्डों, एक बन्दरगाह और सैन्य अड्डे पर भी कब्ज़ा कर लिया जिससे रूस और यूक्रेन के बीच आमने-सामने की जंग जैसे हालात बन गये। 2 मार्च को रूस की संसद ने भी राष्ट्रपति पुतिन के यूक्रेन में रूसी सेना भेजने के निर्णय का अनुमोदन कर दिया। इसके पीछे तर्क दिया गया कि वहाँ रूसी मूल के लोग बहुतायत में हैं जिनके हितों की रक्षा करना रूस की ज़िम्मेदारी है। दुनिया भर में इस संकट से चिन्ता छा गयी और कई देशों के राजनयिक अमले हरकत में आ गये। यही नहीं, 3 मार्च को दुनिया भर के शेयर बाज़ार गिर गये। अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा और उनके यूरोपीय सहयोगियों ने रूस के क़दम को अन्तरराष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए ख़तरा बताया। अन्य देशों द्वारा की

गयी अपील पर रूस ने यूक्रेन सीमा पर युद्धाभ्यास सेना को आंशिक रूप से वापस बुलाने का निर्णय लिया, इससे युद्ध का खतरा तो टल गया किन्तु क्रीमिया पर रूसी सैनिकों का कब्जा जारी रहा। रूस का रवैया हालिया वर्षों में उसकी बढ़ती आर्थिक शक्तिमत्ता (जिसका आधार रूस के पास मौजूद विशाल प्राकृतिक गैस रिजर्व हैं) और उसकी सामरिक शक्ति के फिर से उभार को दिखला रहा है। यही कारण है कि पहले सीरिया में असद के शासन के समर्थन में रूस खुलकर उतरा और पश्चिमी साम्राज्यवादियों को अपने आक्रामक रवैये को वापस लेने को बाध्य किया। उसके बाद, यूक्रेन के मसले पर भी रूस का रवैया वैसा ही आक्रामक है। रूस और चीन ने हाल ही में डॉलर की बजाय युआन व रूबल में विनियम करने का भी निर्णय लिया है। ये सारे कदम अमेरिकी वर्चस्व के ह्रासमान होने और रूस-चीन के नेतृत्व में एक नयी चुनौती पैदा करने वाली धुरी के निर्माण की ओर इशारा कर रहे हैं।

बहरहाल, यूक्रेन में जारी इस उठापटक का फायदा वर्चस्व और क्षेत्राधिकार प्राप्त करने के लिए साम्राज्यवादी ताकतें उठाने की कोशिश में एड़ी-चोटी का जोर लगा रही हैं। अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों में अत्यधिक उलझे होने के कारण साम्राज्यवादी गिद्धों को यूक्रेन भी एक मुनाफ़े का भरा-पूरा चरागाह नज़र आ रहा है। निर्विवाद रूप में अमेरिका, रूस तथा यूरोपीय संघ द्वारा एक-दूजे पर तमाम आक्षेप, टिप्पणियाँ, शब्दबाण व धमकियाँ दुनिया को आर्थिक व क्षेत्रीय रूप से विभाजित कर देने के साम्राज्यवादी संघर्ष और उनके अन्तरविरोधों की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।

इस पूरे प्रकरण में अगर देखा जाये तो रूस का 'अपर हैण्ड' यूक्रेन को तात्कालिक राहत देने के प्रस्तावों के रूप में ज़रूर रहा है किन्तु इसका अर्थ कतई समाजसेवा नहीं बल्कि रूस का हित है जो कि सारी दुनिया में छाई आर्थिक मन्दी के बावजूद इस समय एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है और पूँजी को विस्तारित करने के लिए बहुत ही तत्परता से नए अड्डों की तलाश में संलग्न है तथा अपने समकक्ष महाप्रभुओं को कड़ी टक्कर दे रहा है। जैसा कि लेनिन ने कहा है "यह सन्देह से परे है कि पूँजीवाद का एकाधिकारी पूँजीवाद या वित्त पूँजी में संक्रमण दुनिया के विभाजन के लिए संघर्ष के तीखे होने के साथ जुड़ा होता है।" अतिउत्पादन द्वारा उत्पन्न आर्थिक संकट से निपटने के लिए सारी दुनिया पर युद्ध थोपकर, विनाश और विध्वंस और फिर पुनर्निर्माण की कवायद, स्थिर पूँजी को चलायमान बनाने की साम्राज्यवाद की तार्किक नियति है। मन्दी के परिणामस्वरूप बढ़ती बेरोज़गारी, भुखमरी, बदहाली और परिणामतः बढ़ते जन-असन्तोष से निपटने के लिए यही वह तर्क है जिसे साम्राज्यवादी और दुनिया के सारे प्रतिक्रियावादी समूह जन-उभारों से निपटने में अपनाते हैं। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध इसके सबसे प्रमुख उदाहरण हैं जिनमें मानवता व प्रकृति को भयंकर नुकसान उठाना पड़ा। हालाँकि इन युद्धों में स्वयं साम्राज्यवादी ताकतों को आपसी टकरावों के परिणामस्वरूप भारी नुकसान उठाना पड़ा। दो-दो विश्वयुद्धों का समाहार करके वैश्विक बुर्जुआ तन्त्र ने युद्धों को अपने हिसाब से

विनियमित और अनुकूलित करने की कोशिश की है। दो-दो विश्वयुद्धों से साम्राज्यवादी ताकतों ने यह सबक निकाला है कि फ़िलहाल आमने-सामने टकराने से बचा जाये। इसके बजाय वे तीसरी दुनिया के देशों की जनता को तोपों का चारा बनाकर सामरिक जोर आजमाइश कर रहे हैं। विश्वयुद्धों का स्थान जारी क्षेत्रीय युद्धों ने ले लिया है लेकिन इनका स्वरूप विश्वव्यापी है। जिसके अनेकों उदाहरण हम अमेरिका द्वारा वियतनाम, इराक़, अफ़ग़ानिस्तान तथा तमाम अफ़्रीकी देशों में युद्ध थोपकर साम्राज्यवादी विस्तार के रूप में या ताज़ा मिसाल के तौर पर मध्य एशिया में अमेरिका के लठैत इज़रायल द्वारा फ़िलिस्तीन पर जारी हमले के रूप में देख सकते हैं और यूक्रेन को भी साम्राज्यवादी अपनी प्रयोगशाला के अगले मेढ़क के तौर पर देख रहे हैं।

साम्राज्यवादी ताकतें युद्धों को अपने हिसाब से चाहे जितना विनियमित व अनुकूलित करने की कोशिश करें, साम्राज्यवादी युद्ध के अपने तर्क होते हैं, ये साम्राज्यवादी हुकूमतों की चाहतों से नहीं बल्कि विश्व साम्राज्यवादी तन्त्र के अपने अन्तर्निहित तर्क से पैदा होते हैं। विश्वयुद्ध की सम्भावना पूरी तरह निर्मूल नहीं हो सकती, लेकिन फिर भी अगर मौटे तौर पर बात करें तो पहले की तुलना में कम प्रतीत होती हैं। जब तक साम्राज्यवाद का अस्तित्व है, तब तक मानवता को युद्धों से निजात मिलना मुश्किल है। युद्ध होता ही रहेगा चाहे वह 'हॉटवॉर' के रूप में हो या 'कोल्डवॉर' के रूप में, गृहयुद्ध के रूप में, क्षेत्रीय युद्ध या फिर विश्वयुद्ध के रूप में क्योंकि साम्राज्यवाद का मतलब ही है युद्ध।

वस्तुतः निरन्तर युद्धजन्य परिस्थितियों की मौजूदगी साम्राज्यवाद के निराशोन्मुख संघर्ष की ही एक अभिव्यक्ति है और अन्ततः बेड़ा गर्क करते हुए समाप्त हो जाना ही साम्राज्यवादी विकास की अपरिहार्य नियति है। इतिहास का यह अपरिवर्तनीय नियम है।

उसे यह फ़िक्र है हरदम नया तर्ज-जफ़ा क्या है,
हमें यह शौक है देखें सितम की इन्तहा क्या है।
दहर से क्यों ख़फ़ा रहें, चर्ख़ का क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही, आओ मुक़ाबला करें।
कोई दम का मेहमाँ हूँ ऐ अहले-महफ़िल,
चरागे-सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवा में रहेगी ख़याल की बिजली,
ये मुश्ते-खाक़ है फ़ानी, रहे रहे न रहे।

(3 मार्च 1931 को छोटे भाई कुलतार को लिखे भगतसिंह के पत्र से)

तर्ज-ए-जफ़ा : अन्याय; दहर : दुनिया;
चर्ख़ : आसमान; चरागे-सहर : सुबह का चिराग़;
अदू : दुश्मन; मुश्ते-खाक़ : मुट्ठीभर धूल;
फ़ानी : नश्वर

ड्रोन हमले अमेरिकी हुक्मरानों का खूँखार चेहरा

● लखविन्दर

पाकिस्तान के वजीरिस्तान प्रान्त के दत्ता खेल टाउन सेण्टर में 17 मार्च 2011 को एक मसला हल करने के लिए लगभग 40 लोग जुटे थे। इनमें आम लोगों सहित कबीलों के सरदार, सरकारी अधिकारी और कर्मचारी भी शामिल थे। इसके अलावा वहाँ 35 पुलिस वाले भी मौजूद थे। इस सभा की जानकारी पाकिस्तानी सेना को दस दिन पहले ही दे दी गयी थी। जब बहस चल ही रही थी कि वहाँ जुटे लोगों पर एक मिसाइल हमला हुआ जिसमें 42 लोग मारे गये। बुजुर्गों में से एक भी नहीं बचा।



यह अमेरिकी खुफिया एजेंसी सी.आई.ए. द्वारा किया गया 'ड्रोन हमला' था। ड्रोन ऐसे छोटे लड़ाकू हवाई जहाज को कहा जाता है जिसमें कोई पायलट नहीं बैठता बल्कि इन्हें कहीं दूर स्थित सैनिक अड्डे से रिमोट द्वारा संचालित किया जाता है। ड्रोन हमले की यह कोई एक घटना नहीं है। दुनिया के कई देशों में हज़ारों बेगुनाह बुजुर्गों, बच्चों, स्त्रियों, पुरुषों का लहू इन घातक ड्रोन हमलों द्वारा बहाया जा चुका है।

'कण्ट्रोल रूम' में बैठे आपरेटरों के लिए यह सब एक वीडियो गेम की तरह होता है। सामने खड़े इन्सानों को मारने की तुलना में कम्प्यूटर स्क्रीन पर दिखायी दे रहे 'टारगेट' को बटन दबाकर उड़ा देना कहीं आसान होता है। इसलिए हमले की क्रूरता और भी बढ़ जाती है। शादी, मातम, या अन्य अवसरों पर इकट्ठा हुए लोगों के भारी समूह एक बटन दबाकर उड़ा दिये जाते हैं। घरों में सो रहे लोगों को एक पल में मलबे के ढेर में मिला दिया जाता है। बसों-कारों में बैठी सवारियों की जिन्दगी का सफ़र किसी "आतंकवादी" के सवार होने के शक के आधार पर ख़त्म कर दिया जाता है। यहाँ तक कि अकसर हमले के बाद घायलों और मृतकों के पारिवारिक सदस्यों, आम लोगों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तक को फिर से मिसाइल दाग कर निशाना बनाया जाता है।

अमेरिका में स्थित सैनिक अड्डों में बैठे अमेरिकी कमाण्डर कम्प्यूटर और उपग्रहों द्वारा कण्ट्रोल होने वाले इन मानवरहित ड्रोन विमानों द्वारा दूसरे देशों में तथाकथित आतंकवादियों को निशाना बनाते हैं। हमले एक सफाया सूची के आधार पर किये जाते हैं। यह सफाया सूची मुख्य रूप से

शक के आधार पर बनायी जाती है। हमले दो तरह के होते हैं। 'पर्सनेलिटी स्ट्राइक' वे ड्रोन हमले होते हैं जिनमें किसी एक व्यक्ति को निशाना बनाया जाता है। 'सिग्नेचर स्ट्राइक' हमलों द्वारा अनजान लोगों के समूह को शिकार बनाया जाता है जिसमें शामिल लोगों को शक के आधार पर अमेरिका-विरोधी आतंकवादी मान लिया गया जाता है। अधिकतर हमले दूसरी तरह के होते हैं।

अमेरिकी खुफिया एजेंसी सी.आई.ए. द्वारा पहला ड्रोन हमला जार्ज डब्ल्यू बुश के राष्ट्रपति काल में 2 फरवरी 2002 को अफ़गानिस्तान में किया गया था। इस पहले ड्रोन हमले में तीन बेहद ग़रीब लोग मारे गये थे। सी.आई.ए. ने इनमें एक के ओसामा बिन लादेन होने का अनुमान लगाया था। अनुमान का आधार था उस व्यक्ति का लम्बा कद! (हालाँकि मारे गये व्यक्ति का कद पाँच फुट ग्यारह इंच था, लादेन से छह इंच कम)। पाकिस्तान, अफ़गानिस्तान, यमन, लीबिया, इराक़ और सोमालिया में अब तक सैकड़ों ड्रोन हमले किये जा चुके हैं जिनमें हज़ारों बेगुनाहों का खून बहाया जा चुका है। कितने लोग मारे जा चुके हैं और कितने घायल और अपंग हुए इसके बारे में पूरी जानकारी हासिल करना असम्भव है लेकिन फिर भी कुछ जानकारी सामने आयी है।

अमेरिका की रिपब्लिकन पार्टी के एक सेनेटर, जो ड्रोन हमलों का कट्टर समर्थक है, ने 20 फरवरी 2012 को एक बयान में कहा कि अमेरिकी ड्रोन विभिन्न देशों में अब तक 4700 लोगों को मौत के घाट उतार चुके हैं। एक ब्रिटिश जाँच संगठन 'ब्यूरो ऑफ़ इन्वेस्टीगेटिव जर्नलिज़्म' का तब तक का यह अन्दाज़ा था कि इन हमलों के दौरान तीन देशों - पाकिस्तान, यमन और सोमालिया - में 3,072 से लेकर 4,756 लोग मारे जा चुके हैं।

अफ़गानिस्तान के साथ लगे हुए पाकिस्तान के सरहदी

इलाकों में तालिबान, अल कायदा आदि संगठनों के आतंकवादियों को मारने के नाम पर 2004 में ड्रोन हमले शुरू हुए थे। अफ़गानिस्तान पर अमेरिकी कब्जे का विरोध कर रहे लोग इस इलाके में सक्रिय हैं। अमेरिका हर सूरत में अफ़गानिस्तान पर अपना नियन्त्रण बनाये रखना चाहता है। 'ब्यूरो ऑफ़ इन्वेस्टीगेटिव जर्नलिज़्म' के मुताबिक जून 2004 से सितम्बर 2012 तक ड्रोन हमलों में पाकिस्तान के 2,562 से लेकर 3,325 लोग मारे गये थे, जिनमें 474 से 881 के बीच आम नागरिक थे, 174 बच्चों सहित। इस रिपोर्ट के मुताबिक 1228 से 1362 लोग इसमें ज़ख्मी हुए।

'ब्यूरो' की एक रिपोर्ट के मुताबिक यमन में 2002 से जुलाई 2013 तक करीब 157 ड्रोन हमले हुए जिनमें अनुमानतः 818 लोग मारे गये। रिपोर्ट के मुताबिक ज़ख्मी हुए लोगों की संख्या 170 बतायी गयी। इनमें बच्चे, औरतें और बजुर्गों सहित साधारण नागरिक शामिल हैं। इसी रिपोर्ट में सोमालिया में 2007 से 31 जुलाई 2013 तक 21 हमले होने का अन्देश है जिनमें अन्दाज़न 152 लोग मारे गये और 44 ज़ख्मी हुए।

अख़बारों, टी.वी. चैनलों, सरकारी विभागों, सामाजिक संगठनों की ख़बरों व रिपोर्टों से तैयार किये गये ये आँकड़े अमेरिकी हाकिमों द्वारा किये जा रहे मानवता के विनाश की पूरी तस्वीर पेश नहीं कर सकते। इन देशों की सरकारें अमेरिकी ड्रोन हमलों का विरोध तो करती हैं लेकिन असलियत में इन्हें उनका पूरा समर्थन है। अमेरिका और सम्बन्धित देशों की सरकारों द्वारा ड्रोन हमलों में मरने और घायल होने वालों की संख्या कम करके बतायी जाती है, और यह मानकर चला जाता है कि सैनिक आयु का हर व्यक्ति 'आतंकवादी' है! लेकिन इन आँकड़ों से एक हद तक अमेरिकी साम्राज्यवादियों की हैवानियत के दर्शन तो होते ही हैं।

सिर्फ़ मौतों और घायलों की संख्या से ही ड्रोन हमलों के बेगुनाह लोगों पर ढाये जा रहे कहर का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता। जिनके सिर पर अक्सर घण्टों तक ड्रोन मँडराते रहते हैं उनके द्वारा भोगे जा रहे सन्ताप का आप अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। ड्रोन हमलों का निशाना बनने वाले इलाकों के लोग हमेशा गम्भीर मानसिक परेशानी से घिरे रहते हैं। उनको हर समय मारे जाने का डर सताता रहता है। लोग बच्चों को स्कूल भेजने से डरते हैं। घरों से निकलने से तो लोग डरते ही हैं बल्कि घरों के अन्दर भी लोग सुरक्षित महसूस नहीं करते। लगातार तनाव के चलते मानसिक बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं।

लन्दन के एक मनोविज्ञानी पीटर शाप्पेल्लड ने 2013 में यमन में ड्रोन हमलों वाले इलाके के लोगों से सम्बन्धित एक रिपोर्ट में बताया कि जिन लोगों की उन्होंने जाँच की उनमें 92 प्रतिशत मानसिक बीमारी से पीड़ित हैं। बच्चे इस बीमारी से अधिक पीड़ित हैं। उन्होंने बताया कि ड्रोंनों के डर से औरतें गर्भपात का शिकार हो रही हैं। शाप्पेल्लड कहते हैं कि एक व्यक्ति की मौत सैकड़ों लोगों को भयानक मानसिक चोट पहुँचाती है। ड्रोंनों का डर एक पूरी पीढ़ी को भयानक मानसिक सदमा पहुँचा रहा है। यमन के एक स्कूल के प्रिंसिपल ने एक पत्रकार को बताया कि बच्चे ज़रा सी आवाज से डर जाते हैं। बहुत से बच्चे हमेशा गुस्से में रहते हैं और किसी से बात नहीं

करते। ड्रोंनों का डर इतना ज़्यादा है कि उन्हें रात को नींद नहीं आती।

हमारे देश में ही नहीं बल्कि दुनियाभर में अमेरिकी साम्राज्यवादियों और उनके सहयोगी देशों द्वारा अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, लीबिया, यमन, सोमालिया, इराक़ और फ़िलिस्तीन में किये जा रहे इन भयंकर ड्रोन हमलों के बारे में बहुत कम जानकारी है। बहुत से लोगों को ऐसा लगता है जैसे अमेरिकी सरकार अमेरिका और संसार के लोगों की इस्लामी आतंकवादियों से रक्षा के लिए लड़ रही है। साम्राज्यवादी मीडिया या तो अमेरिकी साम्राज्यवाद के भयानक दुष्कर्मों के बारे में मौन धारे रखने की नीति पर चलता है और या फिर इसके दुष्कर्मों को "आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई" बताकर लोगों को गुमराह करता है।

अमेरिकी पूँजीपति वर्ग अपने देश के मेहनतकश लोगों की लूट तो करता ही है बल्कि उससे भी ज़्यादा दूसरे देशों खासकर एशिया, अफ़्रीका, लातिनी अमेरिका के देशों के कच्चे माल और मेहनतकश जनता की लूट से बेहिसाब मुनाफ़े बटोरता आया है। अरब देशों के तेल स्रोतों पर कब्ज़ा करना इसका हमेशा से मुख्य एजेण्डा रहा है। अपना दबदबा कायम रखने के लिए आर्थिक तौर-तरीकों का उपयोग तो करता ही है, बल्कि सीधी फौजी दखलन्दाजी द्वारा और इसका डर दिखाकर दबदबा बनाये रखने की धिनौनी चालें चलता रहा है। "आतंकवाद के खिलाफ़ लड़ाई" के बहाने दूसरे देशों की जनता पर युद्ध थोपे जाते रहे हैं। इस समय अफ़गानिस्तान, इराक़, सोमालिया, यमन, पाकिस्तान आदि देशों में जारी सैनिक दखलन्दाजी अमेरिकी पूँजीपति वर्ग की साम्राज्यवादी नीति का ही एक हिस्सा है न कि "आतंकवाद के खिलाफ़ लड़ाई" और "विश्व में शान्ति स्थापित करने की लड़ाई" का हिस्सा। जिस अल कायदा को ख़त्म करने का बहाना बनाकर विभिन्न देशों में अमेरिकी हाकिम बेगुनाहों का खून बहा रहे हैं वही अल कायदा अमेरिका की मदद से ही एक बड़ी ताक़त बनकर उभरा था। सोवियत साम्राज्यवाद के साथ अपनी लड़ाई में अमेरिकी साम्राज्यवादी हुक्मरानों ने अल कायदा की पैसे, हथियारों और ट्रेनिंग द्वारा मदद की थी। अल कायदा ने आज तक मानवता के खिलाफ़ जो अपराध किये हैं वास्तव में वे अमेरिकी साम्राज्यवाद के अपराध हैं। आज अल कायदा के खिलाफ़ लड़ाई के नाम पर अमेरिकी हुक्मरान अपने लुटेरे हितों की पूर्ति की कोशिश कर रहे हैं। इसलिए ड्रोन हमलों द्वारा अल कायदा के खिलाफ़ लड़ाई तो सिर्फ़ एक बहाना है, असली निशाना तो दूसरे देशों की मेहनतकश जनता की लूट करना है। यह भी एक तथ्य है कि विभिन्न मुसलिम देशों में फौजी दखलन्दाजी द्वारा जनता पर ढाये जा रहे अत्याचारों ने अल कायदा जैसे आतंकवादी संगठनों के हाथ और मज़बूत ही किये हैं।

इस हमलावर नीति के खिलाफ़ अमेरिकी जनता में काफी असन्तोष मौजूद है। मौजूदा अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने जनवरी 2009 में पहली बार राष्ट्रपति बनने से पहले अपनी चुनाव अभियान में वादा किया था कि अगर वह राष्ट्रपति बनता है तो वह अमेरिका की हमलावर नीति को त्याग देगा। पिछले पाँच वर्षों के दौर ने यह साबित किया है कि यह महज़

एक चुनावी स्टण्ट था। हमलावर नीति को छोड़ने या कम करने की तो बात ही दूर, बल्कि यह पहले से भी अधिक उग्र हो गयी है। यह बात ड्रोन हमलों से भी बखूबी समझी जा सकती है। 2001 से 2009 तक बुश के आठ साल के राष्ट्रपति कार्यकाल के दौरान 45 से 52 ड्रोन हमले किये गये थे। ओबामा के राष्ट्रपति बनने के बाद इनमें बेहद तेज़ी आयी। 'ब्यूरो' की 23 जनवरी 2014 की एक रिपोर्ट के मुताबिक ओबामा के पहले पाँच वर्ष के कार्यकाल के दौरान तीन देशों पाकिस्तान, यमन और सोमालिया में कम से कम 390 ड्रोन हमले हो चुके हैं जिनमें कम से कम 2400 लोग मारे गये।

उल्लेखनीय है कि अन्तरराष्ट्रीय क़ानूनों के अन्तर्गत भी कोई देश किसी देश द्वारा हमला होने की सूत में ही जवाबी कारवाई के रूप में वापस हमला कर सकता है। अपने खुद के बनाये क़ानूनों की साम्राज्यवादी देश हमेशा से ही धज्जियाँ उड़ाते रहे हैं। अमेरिका इनमें सबसे आगे है। अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान, यमन, सोमालिया, इराक़ या किसी और देश द्वारा अमेरिका पर कभी कोई हमला नहीं हुआ। लेकिन अमेरिकी हमलावर सेनाएँ इन देशों में युद्ध कर रही हैं। ड्रोन हमलों के बारे अमेरिकी सरकारें पहले तो कुछ भी बोलने से बचती रही हैं। लेकिन ड्रोन हमलों के खिलाफ़ उठ रही आवाज़ों से मजबूरहोकर 23 मई 2013 को ओबामा ने इसके बारे अपना मुँह खोला और सरेआम झूठ बोला। “शान्ति” का “नोबेल पुरस्कार” प्राप्त करने वाले “महापुरुष” ओबामा ने कहा कि जनता की सुरक्षा के प्रति सरोकार और बहुत ही मुश्किल चुनाव के तहत ही वह ड्रोन हमले कर रहे हैं। उसने कहा कि ये हमले पूरी तरह क़ानूनी हैं। ओबामा का कहना था कि बहुत जाँच-पड़ताल के बाद ही हमले किये जा रहे हैं पर फिर भी कुछ साधारण नागरिक इसका शिकार हुए हैं जिसके लिए उसे ज़िन्दगी भर दुख रहेगा। उसने कहा कि भविष्य में साधारण नागरिकों के शिकार होने की शून्य सम्भावना रखकर ही हमले किये जायेंगे। ओबामा के इस महाझूठ की पोल उसके इस भाषण के बाद बार-बार खुलती रही है। सिर्फ़ शक के आधार पर लोगों के समूहों पर लगातार हमले इसके बाद भी जारी हैं। बेगुनाह बच्चे, औरतें, बुजुर्गों सहित साधारण नागरिक बड़ी संख्या में ओबामा के इस भाषण के बाद भी मारे जाते रहे हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार ड्रोन हमलों का शिकार हुए लोगों में सिर्फ़ दो प्रतिशत ही अल क़ायदा के बड़े नेता थे। बाकी 98 प्रतिशत साधारण नागरिक, अल क़ायदा के साधारण सदस्य और समर्थक और यहाँ तक कि अल क़ायदा के विरोधी थे।

अमेरिकी सेना बड़ी संख्या में ड्रोन विमानों की खरीद पर खर्च कर रही है। 2001 में अमेरिकी सेना के पास 25 ड्रोन थे। जनवरी 2012 में इनकी संख्या बढ़ कर 7000 हो चुकी है। इराक़ और अफ़गानिस्तान में अमेरिकी सेना ने बड़े पैमाने पर ड्रोन इस्तेमाल किये हैं। हथियार उद्योग अमेरिकी अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। अमेरिकी पूँजीपति वर्ग युद्धों से बड़े पैमाने पर मुनाफ़ा कमाता है। आतंकवाद के खिलाफ़ युद्ध, ड्रोन और अमेरिकी अर्थव्यवस्था के बीच के नट-बोल्ट किसी से छिपे नहीं है। इसमें भी कोई हैरानी की बात नहीं कि अमेरिका में उसके अपने नागरिकों की जासूसी और कत्लों के

लिए अगले दस वर्षों में विभिन्न तरह के 30,000 से ज़्यादा ड्रोन स्थापित करने का प्रोग्राम बन चुका है। कहने की ज़रूरत नहीं है कि अमेरिका ड्रोन तकनीक पूरे संसार में इस्तेमाल करने की कोशिश करेगा। विश्व की जनता के खिलाफ़ निरन्तर युद्ध में लगे रहना अमेरिकी साम्राज्यवाद का चरित्र और उसकी ज़रूरत है।

अमेरिकी साम्राज्यवाद आज जिस आर्थिक संकट का शिकार है उसका हमलावर रख अपना, दूसरे देशों के कच्चे माल और बाज़ार पर ज़्यादा से ज़्यादा क़ब्ज़ा जमाने की कोशिश करना उसकी मजबूरी है। इसके बिना यह ज़िन्दा नहीं रह सकता। लेकिन साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था की अपनी खुद की गति इसको कभी भी आर्थिक संकटों से छुटकारा हासिल नहीं करने देगी। आर्थिक संकट और जनता पर दमन-अत्याचार पूँजीवादी-साम्राज्यवाद के घोर मानवता विरोधी होने को दुनिया की लोगों के सामने अधिक से अधिक नंगा करते जायेंगे।

अमेरिका और दूसरे देशों में ऐसे लोग हैं जो सिर्फ़ ड्रोन हमलों का विरोध करते हैं लेकिन समूची सैनिक दख़लन्दाज़ी का नहीं। वास्तव में ड्रोन हमले सैनिक दख़लन्दाज़ी का ही हिस्सा हैं। अफ़गानिस्तान में अमेरिकी युद्ध ने 30 लाख अफ़गानियों को शरणार्थी बना दिया है। अफ़गानिस्तान में औसत आयु 48 वर्ष रह गयी है। 75 प्रतिशत लोग अनपढ़ हैं। 2012 में नवजात शिशुओं की मृत्यु दर 1000 पर 137 थी जो कि विश्व में सबसे ज़्यादा है। अमेरिका द्वारा बिठायी गयी कठपुतली सरकार ने घोर स्त्री विरोधी क़ानून बनाये हैं जिनके अनुसार पति को अपनी पत्नी को पीटने का अधिकार है, स्त्रियों का किसी मर्द को साथ लिये बिना घर से निकलना गैरक़ानूनी है, कि स्त्रियाँ और पुरुष किसी कार्यस्थल पर इकट्ठा काम नहीं कर सकते। अफ़गानिस्तान में आधे से अधिक लोग युद्ध के कारण मानसिक बीमारियों से पीड़ित हो चुके हैं। यह है जो “जनवाद” “शान्ति” पसन्द अमेरिकी हुक्मरानों के “आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध” ने अफ़गानिस्तानी लोगों को तोहफ़े के तौर पर दिया है। इसलिए सिर्फ़ ड्रोन हमलों ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सैनिक दख़लन्दाज़ी का ही विरोध करना चाहिए।

अमेरिकी हुक्मरानों द्वारा ड्रोन हमले और फौजी दख़लन्दाज़ी के विरोध का यह अर्थ नहीं कि हम सिर्फ़ अमेरिकी साम्राज्यवाद का ही विरोध करते हैं। रूस या किसी अन्य देश के साम्राज्यवादी भी मानवता के बराबर के दुश्मन हैं। वास्तव में विश्व में क़ायम समूची पूँजीवादी-साम्राज्यवादी व्यवस्था ही मानवता की दुश्मन है। अल क़ायदा जैसे आतंकवादी संगठन भी इसी व्यवस्था के समर्थक हैं। इसलिए ड्रोन हमलों के विरोध का मतलब यह भी नहीं है कि हम अल क़ायदा जैसे धार्मिक कट्टरपन्थी और आतंकवादी संगठनों का पक्ष ले रहे हैं। इन सभी जनविरोधी ताक़तों के आपस के अन्तरविरोधों में हमेशा मेहनतकशों को ही पिसना पड़ा है। मज़दूरों-मेहनतकशों को सभी रंग-बिरंगी पूँजीवादी-साम्राज्यवादी ताक़तों के खिलाफ़ लड़ाई लड़नी होगी।

दमनकारियों द्वारा जनता का दमन हमेशा जारी नहीं रह पायेगा। जनता पहले भी पूँजीवादी-साम्राज्यवादी हुक्मरानों के ताबूत में कील ठोकती आयी है और आगे भी ठोकती रहेगी।

शहीदेआज़म भगतसिंह के जन्मदिवस (28 सितम्बर) के अवसर पर

नौजवान भारत सभा, लाहौर के घोषणापत्र से कुछ बेहद प्रासंगिक अंश

धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन हमारी प्रगति में बहुत बड़े बाधक हैं। वे हमारे रास्ते के रोड़े साबित हुए हैं और हमें उनसे हर हालत में छुटकारा पा लेना चाहिए। “जो चीज़ आज़ाद विचारों को बर्दाश्त नहीं कर सकती उसे समाप्त हो जाना चाहिए।” इसी प्रकार की और भी बहुत सी कमजोरियाँ हैं जिन पर हमें विजय पानी है। हिन्दुओं का दकियानूसीपन और कट्टरपन, मुसलमानों की धर्मान्धता तथा दूसरे देशों के प्रति लगाव और आम तौर पर सभी सम्प्रदायों के लोगों का संकुचित दृष्टिकोण आदि बातों का विदेशी शत्रु हमेशा लाभ उठाता है। इस काम के लिए सभी समुदायों के क्रान्तिकारी उत्साह वाले नौजवानों की आवश्यकता है।

* * *

देश को तैयार करने के भावी कार्यक्रम का शुभारम्भ इस आदर्श वाक्य से होगा — “क्रान्ति जनता द्वारा, जनता के हित में।” दूसरे शब्दों में, 98 प्रतिशत के लिए स्वराज्य। स्वराज्य, जनता द्वारा प्राप्त ही नहीं, बल्कि जनता के लिए भी। यह एक बहुत कठिन काम है। यद्यपि हमारे नेताओं ने बहुत से सुझाव दिये हैं लेकिन जनता को जगाने के लिए कोई योजना पेश करके उसपर अमल करने का किसी ने भी साहस नहीं किया। विस्तार में गये बग़ैर हम यह दावे से कह सकते हैं कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूसी नवयुवकों की भाँति हमारे हजारों मेधावी नौजवानों को अपना बहुमूल्य जीवन गाँवों में बिताना पड़ेगा और लोगों को समझाना पड़ेगा कि भारतीय क्रान्ति वास्तव में क्या होगी। उन्हें समझाना पड़ेगा कि आनेवाली क्रान्ति का मतलब केवल मालिकों की तब्दीली नहीं होगा। उसका अर्थ होगा नयी व्यवस्था का जन्म — एक नयी राजसत्ता। यह एक दिन या एक वर्ष का काम नहीं है। कई दशकों का अद्वितीय आत्मबलिदान ही जनता को उस महान कार्य के लिए तत्पर कर सकेगा और इस कार्य को केवल क्रान्तिकारी युवक ही पूरा कर सकेंगे।

* * *

युवकों के सामने जो काम है, वह काफ़ी कठिन है और उनके साधन बहुत थोड़े हैं। उनके मार्ग में बहुत सी बाधाएँ भी आ सकती हैं। लेकिन थोड़े किन्तु निष्ठावान व्यक्तियों की लगन उन पर विजय पा सकती है। युवकों को आगे जाना चाहिए। उनके सामने जो

कठिन एवं बाधाओं से भरा हुआ मार्ग है, और उन्हें जो महान कार्य सम्पन्न करना है, उसे समझना होगा। उन्हें अपने दिल में यह बात रख लेनी चाहिए कि “सफलता मात्र एक संयोग है, जबकि बलिदान एक नियम है।” ... नौजवान दोस्तो, इतनी बड़ी लड़ाई में अपने आपको अकेला पाकर हताश मत होना। अपनी शक्ति को पहचानो। अपने ऊपर भरोसा करो। सफलता आपकी है।

* * *

इतालवी पुनरुत्थान के प्रसिद्ध विद्वान मैज़िनी ने एक बार कहा था, “सभी महान राष्ट्रीय आन्दोलनों का शुभारम्भ जनता के अविख्यात या अनजाने, गैरप्रभावशाली व्यक्तियों से होता है, जिनके पास समय और बाधाओं की परवाह न करने वाला विश्वास तथा इच्छा-शक्ति के अलावा और कुछ नहीं होता।” जीवन की नौका को लंगर उठाने दो। उसे सागर की लहरों पर तैरने दो और फिर —

लंगर ठहरे हुए छिछले पानी में पड़ता है।

विस्तृत और आश्चर्यजनक सागर पर विश्वास करो

जहाँ ज्वार हर समय ताज़ा रहता है

और शक्तिशाली धाराएँ स्वतन्त्र होती हैं —

वहाँ अनायास, ऐ नौजवान कोलम्बस

सत्य का तुम्हारा नया विश्व हो सकता है।

* * *

नौजवानों को चाहिए कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक, गम्भीरता से, शान्ति और सन्न के साथ सोचें। उन्हें चाहिए कि वे भारतीय स्वतन्त्रता के आदर्श को अपने जीवन के एकमात्र लक्ष्य के रूप में अपनायें। उन्हें अपने पैरों पर खड़े होना चाहिए। उन्हें अपने आपको बाहरी प्रभावों से दूर रहकर संगठित करना चाहिए। उन्हें चाहिए कि मक्कार तथा बेईमान लोगों के हाथों में न खेलें, जिनके साथ उनकी कोई समानता नहीं है और जो हर नाजुक मौके पर आदर्श का परित्याग कर देते हैं। उन्हें चाहिए कि संजीदगी और ईमानदारी के साथ “सेवा, त्याग, बलिदान” को अनुकरणीय वाक्य के रूप में अपना मार्गदर्शक बनायें। याद रखिये कि “राष्ट्रनिर्माण के लिए हजारों अज्ञात स्त्री-पुरुषों के बलिदान की आवश्यकता होती है जो अपने आराम व हितों के मुकाबले, तथा अपने एवं अपने प्रियजनों के प्राणों के मुकाबले देश की अधिक चिन्ता करते हैं।”

नौजवान भारत सभा



प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन

26 - 27 - 28 सितम्बर 2014

अम्बेडकर भवन, रानी झांसी मार्ग, नई दिल्ली

नौजवान साथियो, कुछ लोग कहते हैं कि देश एक अन्धी गली के आखिरी मुकाम पर पहुँच गया है। हम कहते हैं, देश एक ऐसे ज्वालामुखी के दहाने के एकदम करीब जा पहुँचा है जो फटने को तैयार है।

67 वर्षों की आज़ादी और तरक्की का कुल अंजाम यह है कि आम मेहनतकशों के अथाह दुखों के सागर में समृद्धि के कुछ टापू उभर आये हैं, जिनपर विलासिता की मीनारें जगमगा रही हैं। पूँजीपतियों और धनिकों की ऊपर की पन्द्रह फीसदी आबादी के लिए ही सारी तरक्की है। 70 करोड़ मेहनतकशों की आबादी नर्क से भी बदतर जीवन बिता रही है। अपने हक के लिए आवाज़ उठाने वाली जनता के दमन के लिए तरह-तरह के काले क़ानून हैं और बर्बर दमन तंत्र है। देशी पूँजीपतियों के साथ ही देश को विदेशी लूट का भी खुला चरागाह बना दिया गया है। हर साल खरबों रुपये का मुनाफ़ा विदेशी कम्पनियों ले जाती हैं और अरबों रुपये विदेशी कर्जों का सूद भरने में ही चले जाते हैं। लोगों को बलपूर्वक उजाड़कर जल-जंगल-जमीन की अकूत सम्पदा सरकार देशी-विदेशी पूँजीपतियों को कौड़ियों के मोल दे रही है। पूँजी की मार से दिवालिया लाखों आम किसान आत्महत्या कर रहे हैं और करोड़ों कंगाल होकर मजदूरों की कतारों में शामिल हो रहे हैं। बेरोज़गारी और मँहगाई को हल करने के सारे वायदे सुनते युवाओं की कई पीढ़ियाँ बुढ़ा गयीं, पर ये समस्याएँ घटने के बजाय बढ़ती ही गयीं।

देश की चरम लुटेरी, घोर जनविरोधी और असाध्य संकटग्रस्त आर्थिक व्यवस्था की ही सघन अभिव्यक्ति घनघोर पतित, भ्रष्ट और बर्बर अत्याचारी राजनीतिक ढाँचे के रूप में हो रही है। अब इसमें सुधार की कोई उम्मीद नहीं है। सिर से पाँव तक पूरा सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक ढाँचा सड़ चुका है। अब इस ढाँचे को गहरे में दफ़न करके एक नये सामाजिक ढाँचे की बुनियाद डालनी ही होगी। देश को बचाने का एक ही रास्ता है। हमें एक आमूलगामी सामाजिक जनक्रांति संगठित करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। अब हमें इस्पाती संकल्पों के साथ एकजुट होकर संगठित होकर उठ खड़ा होना होगा।

यह समाज हरकत में आये, इसके लिए सबसे पहले नौजवानों को कमान सँभालनी होगी। उन्हें आगे आना होगा, और जैसा कि भगतसिंह ने फाँसी की कोठरी से देश के नौजवानों को भेजे गये अपने आखिरी सन्देश में कहा था, मजदूर क्रान्ति का सन्देश शहरों की मजदूर बस्तियों और गाँवों की झोपड़ियों तक पहुँचाना होगा।

‘नौजवान भारत सभा’ इसी उद्देश्य से आम मेहनतकश जनता के बहादुर, इंसफ़पसंद, विद्रोही सपूतों को एक ठोस क्रान्तिकारी कार्यक्रम के आधार पर संगठित कर रहा है। इसी नाम से भगतसिंह ने लाहौर में नौजवान संगठन बनाया था। हम नयी क्रान्तिकारी भावना के साथ उसी नाम को जिन्दा कर रहे हैं।

कार्यक्रम

26 सितम्बर

सुबह 10 बजे :

झण्डारोहण

और उद्घाटन सत्र

26 व 27 सितम्बर

प्रतिनिधि सत्र

शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रम

28 सितम्बर

(शहीद भगतसिंह का जन्मदिवस)

खुला सत्र : सुबह 11 बजे से

शाम 5.30 बजे से रैली

सम्पर्क : नौ.भा.स. कार्यालय, बी-100, मुकुन्द विहार, करावल नगर, दिल्ली-110094, फोन: 011-64623928

ईमेल : delhinbs@gmail.com फेसबुक : <https://www.facebook.com/naujavanbharatsabha>

मुक्तिबोध के 50वें स्मृतिदिवस के अवसर पर



उनका प्रसिद्ध लेख

नौजवान का रास्ता

पहाड़ों को तोड़कर, चट्टानी दीवारों को काटकर, कगारों को ढहाकर, गुँजकर और गुँजाकर, पहाड़ी क्षेत्र की धड़कन बनकर, जो आगे बढ़ रहा है उसी को अपनी भाषा में झरना कहते हैं। यही झरना ज़रा दूर चलने पर पहाड़ी नदी बन जाता है। इस नदी के जलनार्द की खोज करने पर पता चलता है वहाँ एक प्रपात है, धुआँधार है, जलधूम है।

अन्वेषक निकलते हैं। रिसर्च के विद्यार्थी निकलते हैं, इंजीनियर्स निकलते हैं। उस स्थान की खोज करते हैं। प्रपात तक रास्ता बनाते हैं, उस पहाड़ी नदी की शक्तिशाली धारा की ताक़त को बिजली की ताक़त में रूपान्तरित करने के लिए एक बिजलीघर बनाया जाता है। वैज्ञानिक अनुसन्धानकर्ता, कार्यकर्ता, कारीगर, कर्मचारी और कलाकार और मजदूर सभी इकट्ठा हो जाते हैं। दूरवर्ती क्षेत्रों में सस्ती बिजली के ज़रिये सिंचाई होती है, कारख़ाने चलते हैं, और देश की धन-धान्य समृद्धि बढ़ती जाती है। कवि और उपन्यासकार बिजलीघर के श्रमशील जीवन के चित्र उभारते हैं, उन्हें गाते हैं। पिछड़ा हुआ मुल्क उन्नति के इतिहास के मार्ग पर दनदनाता हुआ आगे बढ़ जाता है।

अगर नौजवानी की ताक़त को, ज्ञान और बुद्धि तथा कर्म निश्चय की बिजली में रूपान्तरित करते हुए, देश-निर्माण यानी मानव-निर्माण की ऊँची-से-ऊँची मंज़िल तक पहुँचाया जा सकता है, बंजर परती ज़िन्दगी में इश्क़ और इन्क़लाब की रूहानियत की फसल खड़ी की जा सकती है।

ज़िन्दगी बड़ी ही ख़ूबसूरत चीज़ है, वह जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं। अच्छे आदमी क्यों दुख भोगें – इतने नेक आदमी और इतने अभागे! दुनिया में बुरे आदमियों की संख्या नगण्य है, अच्छे आदमियों के सबब ज़िन्दगी बहुत ही ख़ूबसूरत चीज़ है, वह जीने के लिए है, मरने के लिए नहीं।

लेकिन नौजवानों के दिलोदिमाग़ की ताक़त को बिजली में रूपान्तरित करते हुए, देश-निर्माण और मानव-निर्माण में लगाने के लिए, जिस बिजलीघर की ज़रूरत होती है, वह हिन्दुस्तान में नदारद है। अब देश की उन्नति हो तो कहाँ से हो और कैसे हो। जिस देश में नौजवान मारे-मारे फिरते हैं, बेकार रहते हैं, भूखों मरते हैं (बौद्धिक और हार्दिक विकास के लक्ष्य ही जहाँ गुम हैं) तो उस देश के नौजवान अगर अपनी ख़ाली जेब और भूख की यन्त्रणाओं को, अपने दुर्भाग्यों को, चवन्नी-छाप एक्स्ट्रेसों की सूरत देखकर दो मिनट के लिए भुलाना चाहता हो, तो उस नौजवान की तृपित आँखों को लोग भले ही ग़लत समझें, हम उनके बारे में किसी ग़लतफ़हमी में नहीं हैं, क्योंकि हमारा नौजवान बेहद सच्चा है। और बेहद अच्छा है। उसमें बड़ी आग है और बहुत मिठास है। वह दुनिया को उलट सकता है और उलटकर फिर पलट सकता है। लेकिन उसके दिलोदिमाग़ की ताक़त को मानवी बिजली में रूपान्तरित करने वाला बिजलीघर कहाँ है? वह तो नदारद है। इसलिए अगर हमारे नौजवान में कुछ दोष है, कुछ खामियाँ हैं तो

अपराध उसका नहीं है। क्योंकि हमारा नौजवान बहुत सच्चा है और बेहद अच्छा है।

नौजवानी के गीत बहुत लोगों ने गाये हैं। हुस्नोइश्क और इन्क़लाब का काबा नौजवानी ही समझी गयी है। लेकिन जिन तकलीफों में से नौजवान गुज़रता है, उनके बारे में क़लम चलाने का साहस थोड़े ही लोगों ने किया है। यथार्थ कुछ और है, और काल्पनिक लोक कुछ और। माना कि साधारण रूप से नौजवान अपने बाप के घर रहता है, बड़ों की छत्रछाया में पलता है। और दुनिया से लोहा लेने का जोश और उमंग उसमें भले ही रहे, उनके पास अनुभव न होने के कारण उसे पग-पग ठोकर खाना पड़ता है।

यह बात न भूलनी चाहिए कि वर्तमान स्थिति में जबकि पारिवारिक चिन्ताओं का वातावरण घर में खूब घना हो जाता है, और कायम रहता है, हमारा साधारण नौजवान उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। नौजवानी में ज़िन्दगी को पंख फूटते हैं। लेकिन ठीक उसी समय घर का चिन्ताग्रस्त वातावरण उसके मन पर छा जाता है। एक ओर उमंग और जोश लहरें मारता है, तो दूसरी ओर, ठीक उसके विपरीत, नौजवान के हृदय में चिन्ता और घर की उलझनें पुराने अभिशाप की छायाएँ-सी चक्कर लगाती हैं।

पुराने शहीदों का नाम लेकर, भगतसिंह और सुभाष बोस की कीर्ति-कथा सुनाकर, गदर पार्टी और अनुशीलन दल की यशोगाथा सुनाकर, नौजवान के दिल में देशभक्ति और प्रेरणा तो ज़रूर भरी जा सकती है, लेकिन उन कथाओं के ज़रिये उसकी अपनी उलझनों को दूर नहीं किया जा सकता है। हर पीढ़ी के अपने नये अनुभव होते हैं, इस प्रकार नये, कि जो न पुरानी पीढ़ी के थे और न आगामी पीढ़ी के होंगे। फलतः नसीहतों की झाँझ बजाकर नौजवान की समस्या को हल नहीं किया जा सकता। सहानुभूति और मानवीय अनुभवमूलक ज्ञान की आवश्यकता अगर कहीं सबसे ज्यादा पड़ती है, तो वह नौजवान के दिल को समझने में। नौजवान में श्रद्धा का जो आवेग होता है, हृदय की जो तेज़ निगाहें होती हैं, उन पर जिनमें आप ज़िन्दगी के तज़ुर्बात कहते हैं। (यानी सांसारिक दृष्टि) उसकी धूलभरी परतें नहीं छापी रहतीं। फलतः, नौजवान यदा-कदा आपको, अपने अनुभव के कारण, मूर्ख प्रतीत हो सकता है। लेकिन यही उसकी अच्छाई है। जो नौजवान 19-20-21 साल में ही बूढ़ों की खूबसूरत सांसारिक आँखों से ही दुनिया को देखने लगता है, समझ लीजिये कि उसमें साहस की प्रवृत्ति, नये अनुभव प्राप्त करने की जिज्ञासा और क्षमता, तथा जीवन के नव-नवीन उन्मेष का नितान्त अभाव है। ऐसा नौजवान नायब, तहसीलदार या आई.ए.एस. हो सकता है, लेकिन वह देश के किस काम का।

वर्तमान स्थिति यह है कि नौजवानों के गीत गाने से दिल भले ही हलका हो जाये, दिमाग साफ़ नहीं हो पाता, रास्ता नहीं मिल पाता। नौजवानों की कठिनाइयों का एक विशेष स्वरूप होता है। सिर्फ़ यह कह देने से कि 'बढ़े चलो बहादुरो, रवाँ-दवाँ बढ़े चलो' कुछ नहीं होता, हर नौजवान को अपना रास्ता तय करना होता है। और वह उस रास्ते के मोड़ और गड्ढों के बारे

में जानकारी चाहता है, लेकिन हमारे छायावादी इन्द्रधनुषी काव्य की नौजवानी बादलों में ही ले जाती है, ज़मीन पर फैला हुआ रास्ता नहीं बतलाती।

नौजवान का रास्ता! कितना कठिन प्रश्न है यह! हमारे उपन्यासों ने कभी इस प्रश्न पर प्रकाश नहीं डाला!! हमारे साहित्य ने कभी तत्सम्बन्धित मार्गदर्शन नहीं किया। हमारे बड़े-बूढ़े, हमारे आदरणीय बुजुर्ग, नौजवान के सामने 'नौकरी करो, पैसा लाओ' का नारा बुलन्द करते हैं। और नौजवान भी यह चाहता है कि उसकी पारिवारिक प्रतिष्ठा को चार चाँद लगें। लेकिन बेचारा! लेकिन, उसका सच्चा दिशा-दर्शन किसने किया है! किसमें वह ताक़त है कि जो उसके जोश, उत्साह और उमंगों का भार अपने हृदय में झेल सके, उसके आदर्शवादी प्रेम और त्यागभरी श्रद्धा के समस्त अभिप्रायों को समझ सके! उन्हें अपने में रख सके! बहुत कम ऐसे लोग होते हैं, जनाब, जिनमें यह ताक़त, यह फौलादी सीना है। उम्र बढ़ने के साथ ही आदमी समझौते को बुद्धिमानी और प्रतिभा का नाम देता है लेकिन नौजवान मूलभूत प्रश्न उठाता है! और उसके जवाब!

पत्रकार और साहित्यिक, कवि और राजनीतिक, अपने अस्तित्व को निर्णयकारी समझते हैं - मानो कि दुनिया पर वे निर्णय देने जा रहे हों। अपनी काल्पनिक अदालत में फ़ैसले देते रहना एक बात है। सही-सही रास्ता बताना - और जिसको रास्ता बताया जा रहा है, उसके सहचरत्व को स्वीकार करना - एक दूसरी बात है। इस लेख का लेखक एक मामूली आदमी है। अपनी बीती हुई जवानी से सिर्फ़ उसने सबक सीखे हैं - उस नौजवानी के तकाज़े उसके सामने आज भी ज़िन्दा हैं। उनके सवाल आज भी उसको पुकारते हैं - फर्क सिर्फ़ इतना है कि घुटने फोड़ने वाली ठोकरें आज उसे पहले सलाम करती हैं, फिर पेंच लड़ाती हैं। तो ऐसे मामूली आदमी के पास इतनी बड़ी हिमाकत नहीं है कि वह नयी पीढ़ी के नौजवानों (जिनके अपने नये तज़ुर्बात हैं) (को) सीख दे सके।

लेकिन इतना कहकर बात ख़त्म हो सकती है, मामला ख़त्म नहीं होता। सवाल का जवाब कभी-कभी सवाल से दिया जाता है। इसलिए हम कुछ ऐसे सवालों का सिलसिला अपनायेंगे, जिनसे हम हिन्दुस्तान की जनता के अपने तकाज़ों को समझ सकें, इसलिए कि हमारा नौजवान भारतीय जनता का ही एक अंग है।

परिवार समाज की इकाई है, चाहे वह रूसी समाज हो या चीनी, हिन्दुस्तानी हो अथवा ब्रिटिश। अगर हमारे परिवार में असन्तोष, विश्कोभ, अन्याय, भूख और दरिद्रता होगी तो निश्चय ही उनका असर नौजवान की मनोदशाओं और प्रवृत्तियों पर होगा। हमारे नौजवानों में जो आज छिछली रोमानी प्रवृत्ति, घुमक्कड़पन, गैरज़िम्मेदाराना बर्ताव, ख़ास तरह का फक्कड़पन, पलायनशीलता, आदि दुर्गुण उत्पन्न होते हैं, तो इन प्रवृत्तियों का मूल हमारे परिवार में छाये व्यापक असन्तोष में निहित है।

किन्तु बहुत-से विचारक, स्वयं नौजवान भी, इन प्रवृत्तियों का मूल कारण मानसिक बतलाते हैं, या सोचते हैं, सो ग़लत है।

अगर नौजवान को सही रास्ता मिलता जाये, अपनी

उन्नति और विकास के नये-नये क्षेत्र मिलते जायें, और उसको हमेशा यह प्रतीत होता जाये कि उसकी अपनी उन्नति का कार्य सामाजिक उन्नति का कार्य है, अथवा, दूसरे शब्दों में, सामाजिक क्षेत्र में उसके अपने जीविका-सम्बन्धी कर्तव्य का कार्य सामान्यतः और विशेषतः सामाजिक कर्तव्य भी है, कि जिसके न करने से जनता की हानि होगी, और जिसको सुचारु रूप से करने से जनता का कल्याण और सामाजिक विकास होगा; अगर उसे हमेशा यह प्रतीत होता जाये कि सामाजिक ढाँचे के अन्तर्गत उसकी उपेक्षा नहीं की जा रही है, नहीं की जा सकती है – तो निश्चय ही वह दुगुने रूप से अपना कार्य करेगा और अपनी नौजवान मांसल भुजाओं और चौड़ी छाती की ताकत से बंजर को उपजाऊ बना देगा।

लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के आचार्य डाक्टर डी.पी. मुखर्जी ने, रूस से लौटकर अपनी एक मुलाकात में यह बताया कि उस देश के नौजवान को अपना पेशा चुनने में कोई तकलीफ नहीं होती। साधारण रूप से अपनी आयु के 16-17वें साल में ही वह अपना जीवन-कार्य निश्चित कर चुकता है। बीस-बाईस तक आते-आते वह अपने कार्य में इतना कुशल हो जाता है कि साधारण रूप से उसके जिम्मे ऊँचे-ऊँचे कार्य कर दिये जाते हैं। जो लोग बुजुर्ग हो जाते हैं वे सिर्फ 'चेकअप (जाँच)' करते रहते हैं कि कार्य की तादाद और गुण कहीं कम तो नहीं हुआ है, और चूँकि पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत, हर वर्ष की और हर तीन माह की योजना बनती रहती है (और साधारणतः योजना में बतलाये कार्य की तादाद से ज़्यादा काम करने का हौसला हरेक रखता है) इसलिए हर योजना में पिछली योजना से ज़्यादा काम रहता है और इस निश्चित किये गये ज़्यादा काम से ज़्यादा काम करने का हौसला नौजवान पूरा कर पाता है या नहीं और अगर नहीं कर पाता है तो उसकी कौन-सी दिक्कतें हैं, कौन-सी कठिनाइयाँ हैं, उसकी पूर्ति के लिए उन्हें कौन-सी सुविधा की जरूरत है – यह देखने का कार्य अनुभवी बुजुर्गों, विशेषज्ञों और अन्य प्रतिभाशाली लोगों का होता है, जो खुद दुगुने ज़ोर से काम करते रहते हैं कि वे नौजवानों के सामने अपना उदाहरण रख सकें।

हिन्दुस्तान जैसे देश में – जहाँ अनन्य भूमि है, रत्नगर्भा धरित्री है, और उर्वर वसुन्धरा है, निरभ्र आकाश है, भव्य गम्भीर मेघराज है, और उत्तरस्थ हिमालय नगाधिराज है, विद्युत-शक्ति जल-शक्ति भूमि-शक्ति है – उस देश में अगर नौजवान के छातीर की हड्डियाँ निकल आयें, चप्पल की कीलें पैर में लगातार छेद कर रही हों, चेहरे के बाल बढ़े हुए हों, और अगर वह एक पैसे की दो बीड़ी पीता हुआ किसी लड़की के मुखड़े को देख सिनेमा का एकाध फोश गाना गुनगुना उठता हो, तो उसके दिल की कभी भभकती हुई तो कभी फफकती हुई तमन्नाओं के ज्वार को देख हमें गुस्सा नहीं आता। उस पर गुस्सा करने वालों पर गुस्सा आता है। बल्कि उन शक्तियों की कमर तोड़ने की इच्छा होती है, उन काली ताकतों को हमेशा के लिए जमीन में गाड़ देने के लिए भुजा ऊँची उठ जाती है, जिन्होंने मनुष्यता के रत्नों, इन नौजवानों, को इस तरह पीस डाला है।

हमारे साधारण गरीब मध्यम-वर्गीय नौजवान – जो पढ़ा-लिखा है – को भी अपना पेशा चुनने में बहुत बड़ी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। साधारण रूप से पेशा उसके मनोनुकूल होता ही नहीं, पेशे में उसकी उन्नति भी नहीं होती! किसी से पूछिए, 'आपका क्या हाल है?' जवाब मिलता है, 'बस घिसट रहे हैं!' और फिर वही फीकी मुद्रा!

इसका मतलब यह नहीं कि ज़िन्दगी हँसती नहीं। नहीं – वह अपने रोने में हँस पड़ती है। ठीक वैसे ही जैसे बरसती बदली में से चमचमाता सूरज निकल पड़ता हो! वह तो रूह है जो खिलखिला उठती है! और सिर्फ इसी रूहानी ताकत से अनेक बाधाओं के बावजूद, ज़िन्दगी चलती जाती है। अगर इस रूहानी ताकत को डायनमो समझा जाये तो यह कहा जा सकता है कि ठेले के चारों चक्के गायब हैं और सिर्फ डायनमो चल रहा है। साफ है कि डायनमो चक्कों की सहायता के बिना अकारण है, बेमानी है।

जो समाज और जो राज्य नौजवानों को सतत उन्नतिशील पेशा नहीं दे सकता, वह राज्य और वह समाज टिक नहीं सकता। इतिहास के विशाल हाथ इस वक्त उसकी क़ब्र खोदने के लिए बड़ा भारी गड्ढा तैयार कर रहे हैं।

ठीक यह दशा शिक्षा की भी है। महँगी शिक्षा का मतलब ही यह है कि गरीब अशिक्षित रहे। साधारण मध्य-वर्गीय शिक्षित रहें, किन्तु ऊँची शिक्षा प्राप्त न करें और विशेषज्ञ न हों। सिर्फ ऊँचे घरानों के लोग ही सिद्धहस्त विशेषज्ञता प्राप्त करें, जिसके लिए वे ब्रिटेन जायें, अमेरिका जायें!

यह देखी-मानी बात है कि साधारण मध्यवर्गीय और अन्य गरीब वर्ग में ईमानदार और प्रतिभाशाली, जिज्ञासु और कार्यात्सुक, दुर्दमनीय और त्याग के लिए आकुल नौजवानों की कमी नहीं है, जिनकी मेधा, जिनकी प्रतिभा, जिनकी सूक्ष्म-दृष्टि, जिनका धीरज, और जिनकी गम्भीरता किसी सर्वोच्च देश के नौजवानों से बराबरी का मुकाबला कर सकती है। यहाँ हम बक नहीं रहे हैं। बहैसियत एक तजुर्बेकार और जानकार आदमी के हम यह मान्यता आपके सामने रख रहे हैं।

फिर क्या कारण है कि हमारे इन नौजवानों को अच्छी तालीम नहीं मिल पाती? क्या इन पक्तियों का लेखक और उनका पाठक (दोनों) कुछ हद तक इस बात के दोषी नहीं हैं कि उन्होंने अब तालीम की माँग का नारा बुलन्द नहीं किया?

साक्षरता-प्रसार, समाज-शिक्षा, तालीम का स्थान नहीं ले सकते। तालीम के अन्तर्गत अपने पेशे का सिर्फ ज्ञान ही नहीं आता, वरन दुनिया के सभी मुख्य-विषयों की अच्छी-खासी जानकारी भी सम्मिलित है। आज जिस प्रकार की शिक्षा हमारे नौजवानों को दी जा रही है, वह एक तो महँगी है, और दूसरे, सिर्फ उसी वर्ग के नौजवानों के लिए है जो शासक वर्ग के समर्थक या समर्थकों के समर्थक धनी अथवा उच्च मध्यम-वर्गीय परिवारों में से आते हैं।

श्री राजगोपालचारी मध्यम-वर्ग के सम्बन्ध में लिखते हुए यह कहते हैं कि इस वर्ग में साहस का अभाव है, वह बाबूगिरी पसन्द करता है। वे सलाह देते हैं कि जिन पेशों को नीचा समझा जाता है, वे वस्तुतः वैसे हैं नहीं। पेशा नीचा या

ऊँचा नहीं होता। मध्यम-वर्ग को चाहिए कि वे नीचे पेशों को भी स्वीकार करें।

नसीहत और बेमाँगी सलाह देने वाले कांग्रेसी उस्तादों को यह मालूम नहीं कि अगर मध्यम-वर्गीय लोग बाबूगीरी ही करते हैं तो इसका बहुत कुछ कारण पुश्तैनी है। चमार का लड़का चमार, बनिये का बनिया, और क्लर्क का लड़का क्लर्क, अपने पेशे के संस्कारों को लेकर आगे आता है। ये संस्कार उसकी कार्यक्षमता में सहायक होते हैं। और अगर उसका पुश्तैनी पेशा छुड़ा ही देना है तो क्या उसे नयी तालीम की ज़रूरत नहीं है?

और फिर, बाबूगीरी छोड़कर अगर वह चमारी का धन्धा करने लगे तो क्या चमारों पर आफत न आयेगी? अगर वे खेती करने लगे तो क्या भूमि पर जीविका चलानेवालों की लातादाद संख्या में बढ़ती न होगी? लेकिन राजगोपालचारी को तो नसीहत देना है, समस्या को सुलझाना थोड़े ही है!

ध्यान रहे कि सिर्फ पेशा चुनने में और उसमें कार्य-कुशलता प्राप्त करने में हमारे नौजवान की सारी ताकत खर्च हो जाती है। वह जल्दी ही बुढ़ा हो जाता है। चिन्ता-व्यथा उसके भाग्य में लिखी हुई जैसी लगती है। वह ऊपर से चाहे जितना हँसता रहे, उदासी घेरे रहती है।

किन्तु केवल उदासी ही उसको नहीं घेरती। हमारा नौजवान अब यह पूरे तौर से समझ चुका है कि जब तक वर्तमान शासक-वर्ग और उनकी कार्य-नीति, शोषण परम्परा और उसका दमन-चक्र चलता रहेगा, तब तक उद्धार नहीं। वह यह भी समझ चुका है कि जनता के सम्पूर्ण उद्धार के बगैर उसका उद्धार भी असम्भव है।

लेकिन ज़माने-भर को गाली देने से, मात्र सामाजिक आलोचना से, व्यक्ति अपने को बुद्धिमान भले ही घोषित कर सके, वह अपने निज के सामाजिक और पारिवारिक, व्यक्तिगत तथा नितान्त आत्मपरक, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों से कभी भी बरी नहीं हो सकता।

आजकल केवल अपनी परिस्थिति और अन्यायपूर्ण शोषण-व्यवस्था तथा शासन की शिथिलता, भ्रष्टाचार, आदि-आदि को गाली देकर, अपने कमजोर अहं के चारों ओर रक्षा-पाँति खड़ी कर ली जाती है। किन्तु यह स्पष्ट है कि इन रक्षा पाँतियों के अन्दर रहकर कमजोर अहं सुदृढ़ नहीं हो सकता। अहं से मेरा मतलब सिर्फ अपनी निजता की सत्ता से है। जिस प्रकार सिर्फ प्रस्ताव पास करके जनता का उद्धार नहीं हो सकता (ऐसी जनता जिसके हम स्वयं एक अंग हैं), उसी तरह सिर्फ गाली देने से, केवल बढ़-बढ़कर बोलने से, जनता-विरोधी शक्तियों की रक्षा-पाँतियाँ कभी नहीं टूटतीं। अतएव यह एकदम ज़रूरी है कि हम जनता के प्रति अपने सामूहिक और व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों के निर्वाह की तरफ लगातार कदम बढ़ाएँ।

लेकिन, अपने लक्ष्य की ओर सही तरीके से हम अपने कदम तब तक नहीं बढ़ा सकते, जब तक कि हम अपने स्वयं के मन, वचन और कार्य की सही-सही आलोचना न कर सकें। अतएव, शोषण-व्यवस्था की निन्दा तथा

प्रतिक्रियावादियों के विरुद्ध आलोचना करने के साथ-ही-साथ, हमारा यह आदि कर्तव्य हो जाता है कि हम आत्म-आलोचना के हथियार से खुद पर नशतर लगाकर, वे सब कमजोरियाँ दूर करें जो हमारे उत्तरदायित्व की पूर्ति के मार्ग में बाधक हो रही हैं, या बाधक बन सकती हैं। इस मामूली सच्चाई को हम जितनी गहराई से समझेंगे, उतनी ही बड़ी ऊँचाई पर हम बढ़ सकेंगे। गलतियाँ सभी करते हैं, लेकिन बुद्धिमान वह है जो अपनी गलतियों को शीघ्र सुधार ले, और अपने तजुबों से लगातार सीखता जाये। ध्यान रहे कि यह काम कहने में जितना आसान है, उतना ही करने में मुश्किल (इस लेख का लेखक इस बात को खुद पहचानता है)।

इन बातों को दृष्टि में रखकर अगर हम अपने नौजवानों से कुछ निजी बातें करें तो अप्रासंगिक न होगा।

यह सन्देह से परे है कि हमारा साधारण नौजवान आत्म-आलोचना के कठिन अस्त्र को ठीक तरह न प्रयोग करना जानता है, न इतनी चेतन दृष्टि ही रखता है कि वह हर समय जागरूक रह सके। कुछ ऐसे नवयुवक भी होते हैं, जो आत्मभर्त्सना के आवेश में आकर अपने खुद के बारे में न मालूम क्या-क्या सोच लेते हैं। आत्म-भर्त्सना कभी-कभी सही भी होती है, किन्तु अपने अन्दर प्रवृत्ति रूप में उसकी उपस्थिति, आत्मविश्वास को सुरंग लगा देती है, और, फलतः व्यक्तित्व को अन्दर से खोखला कर देती है। हम ऐसी आत्म-आलोचना के मार्ग की बात नहीं कर रहे हैं। आत्म-आलोचना का मार्ग इसलिए अपनाया जाता है कि भुजाओं में ताकत पैदा हो, मस्तिष्क में अधिक तेज़ उत्पन्न हो, जिससे कि जनता के प्रति अपने अनिवार्य उत्तरदायित्वों की राह में आने वाले रोड़ों की मार की वेदना हमारे हृदय और मस्तिष्क पर हावी न हो। जिन नौजवानों के सामने, किसी न किसी सन्दर्भ से, किसी न किसी प्रकार, किन्हीं न किन्हीं अंशों में, जनता का यह लक्ष्य नहीं है, उनकी तो यहाँ बात ही नहीं हो रही है।

हमारे नौजवानों में कौन-कौन सी कमजोरियाँ हैं, इसको गिनाना और उनका विश्लेषण करना सरल नहीं है। ज़रूरी यह है कि इस विषय पर प्रकाश डालने के लिए कुछ खास तरीके अपनाये जायें। यदि यह न करें तो कई बातें हैं जो छूट भी सकती हैं, जिन्हें हम छोड़ना न चाहेंगे। अतएव, पहले तो हम सरसरी तौर पर, उन बातों को कहते जायेंगे जो जहाँ-जहाँ जैसी-जैसी दिखायी देती हैं। इसके बाद हम कमजोरियों को विविध क्षेत्रों – जैसे पारिवारिक, व्यक्तिगत, सामाजिक आदि – में विभाजित कर अपने तई यह सोच लेंगे कि शेष कमजोरियों के विश्लेषण का काम हमारे नौजवान दोस्तों का है। (आत्म-आलोचना के बारे में ऊपर जो लिखा चुका है या अन्य सम्बन्धित विषयों पर लिखा जायेगा, वह निश्चय ही सीमा में बद्ध है। कमजोरियों के रूप परिस्थिति के अनुसार दिखायी देते हैं। चूँकि परिस्थितियाँ अनन्त हैं, इसलिए कमजोरियों के रूप भी अनन्त हैं। कमजोरियों की मर्दुमशुमारी का काम हमारा हर्गिज नहीं)।

हमारे नौजवान दोस्त, जो थोड़ा आगे बढ़े हुए हैं और

एक विशेष क्षेत्र में मुख्यसर असर रखते हैं, उनके सम्बन्ध में पहले चर्चा कर लेंगे। साधारण रूप से हमें कमजोरियों के क्षेत्र में तीन प्रकार के लोग यहाँ दिखायी देंगे। एक वे जो अपनी बातचीत के द्वारा, भाषण कला के द्वारा, लिखाई के ज़रिये, किसी न किसी प्रकार से असर कायम करते हैं; किसी न किसी रूप से, कहीं न कहीं, किसी विशेष स्तर पर, या साधारण रूप से, अहंकारी होते हैं। निश्चय ही, इस अहंकार का जनता के लक्ष्यों से असामंजस्य है। अहंकार से कुछ लोगों में रंग भले ही पैदा हो, उसके द्वारा दिलोदिमाग के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। अहंकार से सूक्ष्म और स्थूल प्रकार की बेईमानी, बददयानती, अवसरवादिता, दादागिरी, रंगदारी, वाचालता, ढीली जवान, निन्दा प्रचार, असावधानता और जिज्ञासा का सर्वनाश, आदि दोष उत्पन्न होते हैं। एक जुर्म से दूसरा जुर्म पैदा होता है। व्यक्तित्व में हास शुरू होता है। जिस प्रकार विकास की मंजिलें होती हैं, उसी प्रकार हास की प्रक्रिया की भी अधोगामी सीढ़ियों का विस्तार होता है। अहंकारी व्यक्ति की बुद्धि की खूबी यह है कि सच में कितनी झूठ मिलायी जाये कि जिससे वह प्रभावकारी हो सके और रंग जमा सके। वह जानता है। इन्हीं बुद्धिमान अहंकारियों में से हजारों नौजवान लीडरी के क्षेत्र में आते हैं – वह लीडरी फिर चाहे जिस क्षेत्र की हो। देखा सिर्फ इतना जाता है कि खुद टोटे में न रहें। इस बचाव को ख्याल में रखते हुए, फिर सभी गुण – जैसे, हार्दिकता, मार्मिकता, सूक्ष्मता, सत्योद्घाटन, सत्यवचन, ऊपरी तौर की मेहनत, आदि बातें सामने की जाती हैं कि जिससे लोग उनकी अच्छाइयों (जिसको वे मानवता कहेंगे) को देख सकें। प्रभाव जम चुकने के उपरान्त, और अगर मुँहफट हुए तो प्रारम्भ से ही, दूसरों की निन्दा पान में लौंग जैसी काम करती है।

दूसरे प्रकार के नौजवान वे होते हैं, जिन्हें व्यक्तिगत आकर्षण और प्रभाव सबसे ज्यादा अच्छे लगते हैं, भले ही उस आकर्षण और उस प्रभाव का सिद्धान्त से अथवा समस्याओं से कोई सम्बन्ध हो या न हो। ऐसे नौजवान अपने व्यक्तित्व का न सफलतापूर्वक विकास कर सकते हैं, न ही उन समस्याओं का ठीक तरह विचार कर सकते हैं जो उनके और उन्हीं सरीखे दूसरों के मन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उद्देलित करती रहती हैं। स्वयं ईमानदार होते हुए भी, आकर्षण और प्रभाव के वशीभूत होकर, वे अन्ततः अपनी मौलिक शक्तियों का न (तो स्वयं) उपयोग कर पाते हैं, न उनका सामाजिक उपयोग हो पाता है। एक प्रकार का अनुगामित्व, अथवा अपने ही में बन्द रहने की प्रवृत्ति, तथा जिज्ञासा का अभाव, आदि विशेष कमजोरियाँ इस वर्ग में निहित रहती हैं।

तीसरी श्रेणी के नौजवानों की प्रकृति ही अलग है। सजी हुई बैठक-कमरे की गन्ध, उनके मन में काम करती हुई, उन्हें ऐसे कार्यों की तरफ ही ले जाती है, जिससे जातीय सामाजिक भद्रता, आदि प्रतिष्ठित (रेस्पैक्टेबिल) वर्ग की कामनाओं की पूर्ति हो सके। उनके लिए अच्छी-खासी बड़ी सी नौकरी, सुघड़-सुन्दर बीवी, कोच, किताबों की एक खूबसूरत आलमारी, एक ट्रे चाय, सुघर चम्मच, दीवार पर सुरुचिपूर्ण

तस्वीरें, आदि सर्वाधिक प्रधान हैं। उनका अहंकार सिर्फ एक ही बात में तृप्त हो जाता है कि अगर कोई प्रतिष्ठित साहित्यिक, महत्त्वपूर्ण नेता, बैठकबाज उम्दा धनी व्यक्ति, यानी ऐसे भद्रजन (उनके घर आये), जिनके आने से उनकी स्वयं की भद्रता और नगर में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को चार चाँद लग सकें। ऐसे नौजवान हमारे ख्याल से जनता के दुश्मन न होते हुए भी दुश्मन जैसे ही हैं। उनमें वे सभी दुर्गुण रहते हैं, जो उनके वर्ग में पाये जाते हैं – जैसे, फर्स्ट क्लास एम.ए. करना हो तो परीक्षकों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डालने के लिए समाज के ऊँचे वर्ग के प्रतिष्ठित लोगों से दोस्ती। खानदान का गर्व, परिवार की प्रतिष्ठा, इनके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

नौजवान मौलिक होता है। उसके हृदय में स्वाभाविक रूप से प्रकृति की मौलिक शक्तियाँ काम करती रहती हैं। किन्तु जब हम उसे अपनी शक्तियों को फालतू की बकवास, व्यर्थ का फक्कड़पन, निस्सार बातें, गैरजिम्मेवाराना बताव, आदि करते देखते हैं, तो लगता है कि क्या इसे नौजवान कहा जा सकता है।

नौजवानी का कौन-सा चित्र हमारे सामने रहना चाहिए?

तर्कसंगत शुद्ध विचार-सरणि और जिज्ञासा, तथ्यों को पहचानने, उनको संगठित कर उनके निष्कर्ष निकालने की शक्ति;

उज्ज्वल आदर्शवाद; बेईमानी, दुमुँही बातें, उत्तरदायित्व-हीनता, कामचोरी, मौखिक आदर्शवाद, घमण्ड, अहंकार आदि का अभाव;

ज्ञान के सामने, सत्य के सामने, हार्दिकता और मार्मिकता के सामने, प्रेम और त्याग के सामने, निरन्तर नम्रता और विनय;

मानव के सतत संघर्षमय विकास में आस्था; बुराइयों, बाधाओं, व्यवधानों, जनता के शत्रुओं पर मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृतिजन्य शुद्ध हृदय में विश्वास;

जनता के उद्धार में श्रद्धा, उनके संघर्षों की सफलता में आध्यात्मिक विश्वास, जनता की सृजनशील ऐतिहासिक शक्तियों की विजय का स्वप्न;

अपने अनुभवों से, दूसरों के तजुबों से, हमेशा सीखते रहने का जागरूक प्रयास और बेखटके और बेशरमाये अपनी ग्लतियों को सबसे सामने स्वीकार करने की नम्र महानता; दूसरों की ग्लतियों और दुर्गुणों के – बशर्ते कि वे बहुत हानिकारक न हों – सहानुभूतिपूर्ण, ईमानदार विश्लेषण का उदारतापूर्ण उत्तरदायित्व, साहसपूर्ण और निश्चयात्मक कदम बढ़ाने की योग्यता; तथा व्यक्तिगत जीवन का संगठन आदि-आदि ऐसी हैं जिन्हें और भी बढ़ाया जा सकता है : (आगे का हिस्सा अनुपलब्ध)

(‘नया खून’, 1952, में प्रकाशित)

भूल-गलती

भूल-गलती
आज बैठी है जिरहबख़्तर पहनकर
तख़्त पर दिल के;
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक,
आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज़ पत्थर-सी,
खड़ी हैं सिर झुकाये
सब कतारें
बेजुबाँ बेबस सलाम में,
अनगिनत खम्भों व मेहराबों थमे।
दरबारे आम में।
सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा
चेहरा
कि जिस पर काँप
दिल की भाफ उठती है...
पहने हथकड़ी वह एक ऊँचा कद,
समूचे जिस्म पर लत्तर,
झलकते लाल लम्बे दाग
बहते खून के।
वह क़ैद कर लाया गया ईमान...
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता,
बेख़ौफ़ नीली बिजलियों को फेंकता
ख़ामोश!
सब ख़ामोश
मनसबदार,
शायर और सूफ़ी,
अलगज़ाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी,
आलिमो फ़ाज़िल सिपहसालार, सब सरदार
हैं ख़ामोश!
नामज़ूर,
उसको ज़िन्दगी को शर्म की-सी शर्त
नामज़ूर,
हठ इन्कार का सिर तान... खुद मुख़्तार।
कोई सोचता उस वक़्त —
छाये जा रहे हैं सल्तनत पर घने साये स्याह,
सुलतानी जिरहबख़्तर बना है सिर्फ़ मिट्टी का,
वो — रेत का सा ढेर — शाहंशाह,
शाही धाक का अब सिर्फ़ सन्नाटा!

(लेकिन, ना
ज़माना साँप का काटा)
भूल (आलमगीर)
मेरी आपकी कमज़ोरियों के स्याह
लोहे का जिरहबख़्तर पहन, खूँखार
हाँ, खूँखार आलीजाह;
वो आँखें सचाई की निकाले डालता,
सब बस्तियाँ दिल की उजाड़े डालता,
करता, हमें वह घेर,
बेबुनियाद, बेसिर-पैर...
हर सब क़ैद हैं उसके चमकते ताम-झाम में,
शाही मुकाम में!
इतने में, हमीं में से
अजीब कराह-सा कोई निकल भागा,
भरे दरबारे आम में मैं भी
सँभल जागा!
कतारों में खड़े खुदगर्ज बा-हथियार
बख़्तरबन्द समझौते
वहमकर रह गये;
दिल में अलग जबड़ा, अलग दाढ़ी लिये,
दुमुँहेपन के सौ तजुर्बों की बुजुर्गी से भरे,
ददियल सिपहसालार संजीदा
सहमकर रह गये!
लेकिन, उधर उस ओर,
कोई, बुर्ज के उस तरफ जा पहुँचा,
अँधेरी घाटियों के गोल टीलों, घने पेड़ों में
कहीं पर खो गया,
महसूस होता है कि वह बेनाम
बेमालूम दरों के इलाक़े में
(सचाई के सुनहले तेज़ अक्सों के धुँधलके में)
मुहैया कर रहा लश्कर;
हमारी हार का बदला चुकाने आयेगा
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर,
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायेगा!

(सम्भावित रचनाकाल 1963। राजनाँदगाँव। कल्पना, अप्रैल 1964, में प्रकाशित। 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित)

फ़िलिस्तीनी कवि समीह अल-कासिम की स्मृति में



जिस वक्त फ़िलिस्तीनी जनता गाज़ा में एक और बर्बर इज़रायली हमले का मुक़ाबला कर रही थी, उसी दौरान उसने अपने एक और बहादुर बेटे, 'प्रतिरोध के कवि' के नाम से मशहूर समीह अल कासिम को खो दिया। 19 अगस्त, 2014 को कैंसर से उनका निधन हो गया।

कासिम का जन्म 11 मई 1939 को हुआ था लेकिन खुद उनके शब्दों में वास्तव में उनका जन्म नवम्बर 1948 में नक़्बा की उन घटनाओं के समय हुआ जब इज़रायल के क़त्लेआम, जबरिया क़ब्ज़े और बलपूर्वक बेदखली के कारण 7 लाख फ़िलिस्तीनी लोग अपने वतन से निकालकर बेघर-बेदर कर दिये गये थे। बर्बर दमन-उत्पीड़न की ये छवियाँ उनकी स्मृतियों में हमेशा के लिए

धँस गयीं और इन्हीं से जन्म हुआ उस कवि का जिसकी कविताएँ बहादुराना फ़िलिस्तीनी प्रतिरोध संघर्ष का मुक्तिगान बन गयीं। इज़रायल में रहने के दौरान सैन्य सरकार की कठोर पाबन्दियों से लड़ते हुए कासिम फ़िलिस्तीनी मुक्ति संघर्ष का पुरज़ोर समर्थन करते रहे। जेल, नज़रबन्दी और यातनाओं से डरे बिना वह आज़ाद फ़िलिस्तीन के लिए आवाज़ उठाते रहे। महमूद दरवेश और तौफ़ीक ज़ायद के साथ मिलकर उन्होंने विश्व साहित्य के मंच पर फ़िलिस्तीन की पहचान निर्मित की।

समीह अल कासिम आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन फ़िलिस्तीन की मुक्ति के लिए उठने वाली हर आवाज़ में, अन्याय के प्रतिरोध में उठने वाली हर मुट्ठी में वह ज़िन्दा हैं। उनकी कविताएँ आज़ाद फ़िलिस्तीन के हर नारे में गूँज रही हैं। उनकी स्मृति में हम यहाँ उनकी दो कविताएँ दे रहे हैं। इन्हें हमने फ़िलिस्तीनी कविताओं के संकलन 'इन्तिफ़ादा' से लिया है। — सं.

रफ़ा के बच्चे

उनके लिए—जो अपना रास्ता
लाखों लोगों के ज़ख्मों से होकर बनाते हैं
और उनके टैंक बागों के गुलाबों को
कुचल देते हैं
उनके लिए—जो रातों को
घरों की खिड़कियाँ तोड़ते हैं
खेत और संग्रहालय जला देते हैं
और फिर इसकी खुशी में गीत गाते हैं
उनके लिए—जो अपने क़दमों की आहट से
दुखी माताओं के केश काट देते हैं
अंगूर के खेतों को
तहस-नहस कर देते हैं
जो शहर के चौराहों पर
खुशियों की बुलबुल को गोली मार देते हैं
और जिनके हवाई जहाज़ बचपन के सपनों को
बमों से उड़ा देते हैं
उनके लिए—जो इन्द्रधनुष तोड़ देते हैं

आज की रात
रफ़ा के बच्चे
यह घोषणा करते हैं
कि हमने नहीं बुनी थी चादरें
सिर के बालों से
हमने नहीं थूका था
मारी गयी औरतों के चेहरे पर

उनके मुँह से नहीं उखाड़े थे सोने के दाँत
तुम हमारी टॉफी छीनकर
बमों के खोखे क्यों देते हो
क्यों तुम अरब के बच्चों को
यतीम बनाते हो
और हम तुम्हें धन्यवाद देते हैं कि
दुखों ने हमें बड़ा बना दिया है
हम लड़ेंगे

II
विजेता की संगीन पर सूर्य की किरणें
एक तिरस्कृत नंगी लाश थी
रक्ताक्त मौन
खून से सने चेहरों के बीच
विद्वेष
प्रार्थना की माला
मिथकीय डीलडौल का
एक आक्रमणकारी चिल्लाता है
तुम नहीं बोलोगे?
ठीक है :
तुम्हारे ऊपर कफ़रू लगाया जाता है...
अल्लादीन की आवाज़ बिखर जाती है
शिकार की चिड़ियों का जन्म होता है
मैंने सेना के वाहन पर पत्थर फेंके
पचें बाँटे
इशारा किया
मैंने ब्रश और पड़ोस से कुर्सी लेकर

नारे लिखे
मैंने बच्चों को भी इकट्ठा किया
और हम लोगों ने क़सम खायी
शरणार्थियों के निर्वासन से
कि हम लड़ेंगे
जब तक विजेताओं की संगीनें
हमारी गली में चमकती रहेंगी
अल्लादीन दस साल से ज़्यादा नहीं था

III

अकासिया के पेड़ उजाड़ दिये गये
और रफ़ा के दरवाजे
दुखों से सील कर दिये गये
या लाख से
या कपूर से
(उस लड़की को रोटी
और एक घायल आदमी के लिए
पट्टी लेनी थी जो आधी रात के बाद लौट रही थी,
उस लड़की को एक गली पार करनी थी
जिस पर नज़र रख रही थीं
अजनबियों की आँखें, तेज़ हवा और बन्दूक की नलियाँ)
अकासिया के पेड़ उजाड़ दिये गये
और एक घाव की तरह
रफ़ा में एक घर का दरवाज़ा
किसी ने खोला

वह उछली
और जासमीन की झाड़ी की गोद में जा गिरी
एक बार आतंक के बीच
जा रही थी सावधानी से कि
खज़ूर के एक पेड़ ने
उसे बचाया था
हर क़दम पर, बस उछलो...
एक ग़श्ती दल
तेज़ रोशनी
खाँसी
—कौन हो तुम
रुको

...
पाँच बन्दूकें उस पर तन गयी थीं
पाँच बन्दूकें

सुबह
हमलावरों की अदालत बैठी
उन्होंने उसे पेश किया

अमीना
'अपराधी'
आठ साल की बच्ची

संयुक्त राष्ट्र के सभी संभ्रान्त लोगों से

ओ जगह-जगह से आये सज्जनो
इस भरी दुपहरी में
आपकी ख़ूबसूरत टाइयाँ
और आपकी उत्तेजनापूर्ण बहसें
हमारे समय में
क्या भला कर सकती हैं

ओ जगह-जगह से आये सज्जनो
हमारे दिल में काई जम गयी है
और इसने
शीशे की सारी दीवारों को
ढँक लिया है
इतनी सारी बैठकें
तरह-तरह के भाषण
इतने जासूस
वेश्याओं जैसी बातें
इतनी गप्पबाज़ियाँ
हमारे समय में
क्या भला कर सकती हैं

सज्जनो
जो होना है सो होने दें
मैं दुनिया तक पहुँचने के रास्ते खोज रहा हूँ
मेरा खून पीला पड़ गया है
और मेरा दिल
वायदों के कीचड़ में फँस गया है

ओ जगह-जगह से आये सज्जनो
मेरी शर्म
एक पर्दा बन जाये, मेरा दुख एक साँप
ओ जगह-जगह से आये काले चमकते जूतों
मेरा गुस्सा इतना बड़ा है
कि कह नहीं सकता
और समय इतना कायरतापूर्ण
और जहाँ तक मेरा सवाल है...
मेरे हाथ नहीं हैं

अनुवाद : रामकृष्ण पाण्डेय

मालिन गाँव हादसा

यह प्राकृतिक नहीं पूँजी-जनित आपदा है

• सुनील

पिछले कुछ दशकों से विश्व का कोना-कोना आश्चर्यजनक रूप से निरन्तर भयावह प्राकृतिक आपदाओं का साक्षी बन रहा है। सुनामी, बादल फटना, बाढ़, भूकम्प, भूस्खलन, हिमस्खलन जैसी घटनाओं से जान-माल की भारी क्षति हो रही है। 2002 में आयी सुनामी और पिछले ही वर्ष की उत्तराखण्ड त्रासदी इसके प्रातिनिधिक उदाहरण हैं। और इस समय कश्मीर में आयी बाढ़ इसका ताजा उदाहरण है।

महाराष्ट्र के पुणे जिला के मालिन गाँव में हुई भूस्खलन की घटना से हम वाकिफ़ हैं जिसमें पूरा गाँव मिट्टी के ढेर तले समा गया और गाँव में रहने वाले अधिकतर (आँकड़ों के मुताबिक 160 से भी ज़्यादा) लोगों की मौत का कारण बना। दुनिया के कोने-कोने में घट रही ऐसी विभीषिकाएँ इस बात की तरफ स्पष्ट इशारा कर रही हैं कि ये प्राकृतिक न होकर पूँजी-जनित आपदाएँ हैं जो बड़ी-बड़ी कम्पनियों के हाथों मुनाफ़े की अन्धी हवस में प्रकृति के ध्वंस के कारण पैदा हो रही हैं। पर्यावरण की भयंकर तबाही और पूरे के पूरे पारिस्थितिक सन्तुलन का इसके कारण गड़बड़ हो जाना हमें और भी ज़्यादा शिद्दत से इस बात का अहसास करा रहा है कि पूँजीवादी व्यवस्था का एक-एक दिन मानवता पर भारी पड़ रहा है। कभी न तृप्त होने वाली मुनाफ़े की हवस पर टिकी, मुनाफ़ाकेंद्रित मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था जो दिन-रात मेहनतकशों का खून चूसकर, उनकी हड्डियाँ निचोड़कर आँसुओं के समुन्दर के बीच ऐयाशी के टापू खड़े करती है, वास्तव में मेहनत और कुदरत दोनों को ही तबाह कर रही है। हम कह सकते हैं कि पूँजीवाद न सिर्फ़ मानवता के लिए घातक है बल्कि पृथ्वी और उस पर विद्यमान जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों यानी पूरे पारिस्थितिकी तन्त्र और पर्यावरण के भी विनाश का सबब बन रहा है। पूँजी की निर्बाध गति किसी भी प्रकार के सामंजस्य और अनुकूलन को नष्ट कर डालती है। अपने चार सौ वर्षों के इतिहास में इसने मनुष्यों और प्रकृति के बीच मौजूद सामंजस्य को भी नष्ट कर दिया है। मुनाफ़े के लिए पूँजीवाद का अराजकतापूर्ण उत्पादन और उसके लिए प्राकृतिक संसाधनों का असामंजस्यपूर्ण दोहन ही ऐसी त्रासदियों को जन्म दे रहा है। इसलिए इसकी ज़िम्मेदार सम्पूर्ण मानवता नहीं बल्कि व्यवस्था के रहनुमा मुट्ठी-भर पूँजीपतियों की जमात और उनके इशारों पर नाचने वाले व्यवस्था के चाकर हैं जो पूँजीवाद के विकास रथ तले मानवता और प्रकृति दोनों को ही रौंदते हुए सरपट दौड़े जा रहे हैं।

पुणे के मालिन गाँव में जो कुछ हुआ उसकी भूमिका काफी समय से तैयार हो रही थी। सड़कें, सुरंगें व बाँध बनाने के लिए अन्धाधुन्ध तरीके से पहाड़ियों को बारूद से उड़ाने, वनों की अन्धाधुन्ध कटाई व अवैध खनन की वजह से पूरे इलाके

की चट्टानों की अस्थिरता बढ़ती है और फलस्वरूप भूस्खलन का खतरा भी बढ़ जाता है। पहाड़ की ढलानों पर वनस्पतियों की मौजूदगी से वर्षा के पानी के बहाव की गति धीमी हो जाती है और हिस्से को भूमिगत जल में मिल जाने का पर्याप्त अवसर मिल जाता है जिससे बाढ़ और भूस्खलन दोनों की सम्भावना कम हो जाती है। महाराष्ट्र के वाइल्डलाइफ बोर्ड के सदस्य किशोर रिटे के अनुसार वर्ष 2007 से ही हजारों हेक्टेयर की भूमि में वनों का सफाया किया गया है और अतिक्रमित भूमि को बिल्डर्स को हाउसिंग कॉम्प्लेक्स बनाने के लिए बेचा गया है। दूसरा संकट का कारण सड़कों का निर्माण है जहाँ कीचड़ को सीधे ढलान के सहारे धकेल दिया जाता है जो वाटर चैनल्स को अवरुद्ध करता है जिसके फलस्वरूप मिट्टी को बाँधने वाली वनस्पति बर्बाद हो जाती है। सारी रीयल एस्टेट कम्पनियाँ निर्माण कार्य बिना किसी पर्यावरण प्रभाव का विश्लेषण किये ही अंजाम देती हैं। दस साल पहले निर्मित डिम्बे बाँध भी इसका एक मुख्य कारण रहा है। मालिन गाँव भी डिम्बे बाँध के बैकवाटर्स के नज़दीक स्थित है और ऐसे क्षेत्रों में भूस्खलन की सम्भावना अधिक रहती है और पहले भी वहाँ छोटे भूस्खलन हुए थे। 2006 से 2007 के बीच सिद्धगढ़वाड़ी और सहारमछ गाँवों में भूस्खलन की घटनाओं में 100 से अधिक पशु दब गये थे। पिछले ही वर्ष पुणे के बाहर कटराज की पहाड़ियों में अनाधिकृत निर्माण भूम में अचानक आयी बाढ़ ने एक बच्चे सहित दो व्यक्तियों की मौत हुई थी। आदिवासी भूमिसुधार के नाम पर पहाड़ी पर जेसीबी मशीनों का इस्तेमाल आदिवासियों के प्रतिरोध के बावजूद किया जा रहा था जिसके फलस्वरूप पहाड़ी में अस्थिरता आना स्वाभाविक ही था।

दुनियाभर के वैज्ञानिक और पर्यावरणविद यह बात कहते आये हैं कि पिछले कुछ दशकों में समूचे भूमण्डल में जलवायु परिवर्तन के लक्षण दिख रहे हैं। ग्लोबल वार्मिंग की परिघटना इसी परिवर्तन की एक बानगी है जिसमें पृथ्वी पर ग्रीनहाउस गैसों (जैसे कार्बन डाईऑक्साइड) के अधिकाधिक उत्सर्जन से वातावरण का औसत तापमान बढ़ रहा है जिसकी परिणति दुनिया के विभिन्न हिस्सों में भारी वर्षा, बाढ़ व सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं की बढ़ती बारम्बारता के रूप में देखने को आ रही हैं। ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन मुख्य तौर पर फॉसिल फ़्यूल के इस्तेमाल में अभूतपूर्व बढ़ोतरी के साथ जुड़ा हुआ है जो सीधे तौर पर विश्वव्यापी पूँजीवादी आटोमोबाइल उद्योग के सनक भरे विकास की वजह से हुआ है। मानसून की अनिश्चितता का बढ़ना व ग्लेशियरों की बर्फ़ का पिघलना भी ग्लोबल वार्मिंग का ही एक प्रभाव है। संसद और विधानसभाओं में बैठे हमारे “जनप्रतिनिधि” इस तरह की तमाम आपदाओं पर जुबानी

जमाखर्च तो अवश्य करते हैं और उन्होंने किया भी। मुख्य मंत्री पृथ्वीराज चव्हाण ने घटना के बाद पूरे राज्य के पारिस्थितिक तन्त्र के सर्वेक्षण की घोषणा की तो वहीं गृहमन्त्री राजनाथ सिंह से लेकर अलग-अलग पार्टी नेताओं ने घटनास्थल का दौरा किया। ये वही लोग हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर इन त्रासदियों के लिए जिम्मेदार हैं।

ऐसे किसी पूँजीवाद की कल्पना नहीं की जा सकती है जो कि पर्यावरण के अनुकूल और उसके प्रति मित्रतापूर्ण हो। पूँजीवाद प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित एक ऐसी अराजकतापूर्ण व्यवस्था है जो कि एक छोटे से लुटेरे वर्ग के मुनाफे की खातिर मेहनत (श्रम) और कुदरत (प्रकृति), दोनों की अन्धाधुन्ध लूट और तबाही पर आधारित है। वास्तव में, मजदूर वर्ग और

प्रकृति की तबाही इसकी पूर्वशर्त है। चाहे मैंग्रोव वृक्षों की कटाई के कारण सुनामी के भयंकर असर की बात हो, या उत्तराखण्ड के जल-प्रलय की बात हो; चाहे ओजोन परत में छेद की बात हो या फिर पृथ्वी के 'आइस कैप' पिघलने और 'ग्लोबल वार्मिंग' की बात हो; ये सारी आपदाएँ खुद-ब-खुद नहीं आ रही हैं और न ही ये ईश्वरीय कारनामे हैं। ये मुनाफाखोर पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा मानवता पर थोपी गयी आपदाएँ हैं। इन आपदाओं की क़ीमत हमेशा की तरह आम मेहनतकश अवाम को सबसे ज़्यादा और सबसे पहले चुकानी पड़ती है, जैसा कि मालिन गाँव में हुआ है। मौजूदा मुनाफाखोर व्यवस्था के दायरे के भीतर इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं है।

ब्राज़ील में फुटबाल वर्ल्ड कप का विरोध

• सनी

मैस्सी बॉल से 5 मीटर दूर खड़ा है, दूसरी तरफ़ बॉल से करीब 10 मीटर की दूरी पर दस खिलाड़ी एक रक्षात्मक दीवार बना कर खड़े हैं। बॉल से करीब 20 मीटर दूर गोलकीपर खड़ा है। लगभग इम्पॉसिबल एंगल है जिससे गोल किया जा सके। खम्बू मैस्सी अपने छोटे-छोटे पैरों को धीरे-धीरे हिलाता है और फिर अचानक बिजली की रफ़्तार से बॉल के पास पहुँचकर अपने पैर गुलेल की तरह खींचता है और न्यूटन के पहले नियम का पालन करते हुए बॉल गुरुत्व, हवा और मैसी के पैर के संवेग के द्वन्द्व में झूमती हुई सीधे गोल के जाल पर जा पड़ती है! स्टेडियम के हज़ारों दर्शक जश्न मनाते हैं, कैमरे के फ्लैश कौंध उठते हैं। कैमरों से खींची जा रही तस्वीरें और आवाज़ सेटेलाइट से सीधे तमाम घरों में प्रसारित होती है और सब झूम उठते हैं।

ठीक इसी समय इज़रायल के बमवर्षक फ़िलिस्तीन की धरती पर बम बरसा रहे हैं, यहाँ भी भौतिकी के नियम लागू हो रहे हैं। बमों के अन्दर संचित रासायनिक ऊर्जा फ़िलिस्तीन की धरती के परखच्चे उड़ा दे रही है। सूर्योदय और सूर्यास्त पर काला धुआँ छाया हुआ है। वहाँ रोशनी नहीं है। कहीं प्रसारण नहीं होता है। कुछ सूचनाएँ रिसकर पहुँच भी जाती हैं तो ये बम से इंसानों के विक्षिप्त शरीरों की दास्तान बयान कर पाती हैं। मैस्सी दुनिया के महानतम खिलाड़ियों में से एक है और ब्राज़ील में हुए विश्व कप में उसके जौहर का शोर मचा हुआ था। अखबारों और तमाम टीवी चैनलों पर ब्राज़ील के वर्ल्ड कप में मैस्सी, रोनाल्डो, नेमार, बेल और ऐसे ही तमाम देशों के महानायकों से ख़बरें रंगीन होती थीं वहीं गाज़ा की सड़कें सिर्फ़ एक रंग – लाल से रंगी थीं। पर इसे नहीं दिखाया गया। सबसे महँगा वर्ल्ड कप उन बच्चों से ज़्यादा ज़रूरी था? तो इस वर्ल्ड कप का महत्त्व क्या था? क्या फ़िलिस्तीन के बच्चों के खून पर जादुई कम्बल बिछाकर छुपा देने के लिए? या ब्राज़ील की जनता को फुटबॉल विश्वकप के खिलाफ़ सड़क पर उतर विरोध करने के लिए? ब्राज़ील को फुटबॉल की धरती माना जाता है। ब्राज़ील की नौजवानी के डी.एन.ए. में फुटबॉल का

हुनर पैबस्त है पर यही ब्राज़ीली जनता बड़े पैमाने पर इस वर्ल्ड कप के विरोध में सड़कों पर उतरी। वर्ल्ड कप शुरू होने से पहले 70 फीसदी ब्राज़ीलियन आबादी ने एक सर्वे में कहा था कि वे नहीं चाहते कि वर्ल्ड कप यहाँ हो! ऐसे क्या कारण थे कि ब्राज़ील की जनता फीफ़ा वर्ल्ड कप के खिलाफ़ सड़कों पर उतर पड़ी? कारण यही है – यह वर्ल्ड कप फीफ़ा वर्ल्ड कप है। और फीफ़ा एक बड़ा व्यापार संघ बनकर उभरा है। इस वर्ल्ड कप के दर्शक महज़ उपभोक्ता के तौर पर देखे जाते हैं। ब्राज़ील का यह वर्ल्ड कप इन उपभोक्ताओं के लिए ही था। यह ब्राज़ील के लोगों का था ही नहीं। चलिये इसी प्रश्न के ज़रिये हम वर्ल्ड कप के राजनीतिक अर्थशास्त्र को समझने की कोशिश करते हैं।

ब्राज़ील के वर्ल्ड कप पर करीब 11.6 बिलियन डॉलर खर्च हुए। यह सरकार के रेसोर्सिबिलिटी मेट्रिक्स का आँकड़ा है। कहने को सरकार ने इसकी काफ़ी तारीफ़ की और खुद ब्राज़ील की राष्ट्रपति डिल्मा ने कहा कि यह देश के विकास में मदद करेगा। परन्तु जब ब्राज़ील वर्ल्ड कप के लिए अपनी बोली लगा रहा था (2008 में) तब ब्राज़ील के राष्ट्रपति लूला का समर्थन लेते हुए ब्राज़ील फुटबॉल फेडरेशन के रिकार्डो टेक्सेईरा ने कहा था कि ब्राज़ील वर्ल्ड कप में सिर्फ़ बुनियादी ढाँचे पर खर्च करेगा और खेल सम्बन्धी सारे निवेश निजी क्षेत्र से होंगे। परन्तु स्टेडियम (जिसका पूरा खर्च निजी क्षेत्र उठाने वाला था) में निजी निवेश सिर्फ़ 1.6 प्रतिशत हुआ। यही हाल अन्य क्षेत्रों के निवेश में हुआ। इस पूरे वर्ल्ड कप में हुए खर्च में निजी निवेश सिर्फ़ 0.4 प्रतिशत था। और जब इस अंधैरगदी के खिलाफ़ जनता सड़क पर उतरी तो सरकार ने इन ज़बर्दस्त प्रदर्शनों को देखते हुए सुरक्षा पर भी करीब 1 बिलियन डॉलर का खर्च किया। दिसम्बर 2013 में रक्षा मन्त्रालय ने प्रदर्शनों को देखते हुए ही एक “क़ानून और व्यवस्था की गारण्टी” नामक दस्तावेज़ निकाला जिसके तहत तमाम जन आन्दोलनों को “विरोधी ताक़तें” बताया गया था तथा हड़तालों, सड़क रोकना आदि को वे मुख्य ख़तरे बताया जिससे सेना को लड़ना चाहिए!

यही ब्राज़ील के उस भागीदारी जनवाद का उदाहरण है जिसपर मार्ता आनेकर और माइकल लेबोविट्ज़ जैसे बुद्धिजीवी वारे-वारे जाते हैं। असल में ब्राज़ील से लेकर तमाम लातिन अमेरिकी “समाजवादी” सत्ताएँ धीरे-धीरे अपना गुलाबी तेवर छोड़कर दक्षिणपन्थ का रंग ओढ़ना शुरू कर रही हैं। गुलाबी ज्वार की जनप्रिय तस्वीर भी अब धुँधली पड़ने लगी है हालाँकि वेनेजुएला अभी भी अपनी पेट्रो-आधारित व्यवस्था के दम पर जनपक्षधर क़दम उठाता है परन्तु बोलीविया से लेकर कोलम्बिया, ब्राज़ील और अर्जेंटीना में तो यह साफ़ हो ही चुका है कि गुलाबी ज्वार का लाल झण्डे से ताल्लुक नहीं है। ब्राज़ील की लूला की सरकार और अब डिल्मा की सरकार खुले रूप में पूँजी की तानाशाही के लिए नीतियाँ बनाती हैं। फुटबॉल वर्ल्ड कप जैसे “इवेंट” ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था के लिए एक बूस्ट देने वाले इंजेक्शन का काम करते हैं। अब चाहे यह इंजेक्शन फुटबॉल की शक्ल में ही क्यों न आये!

जनता ने इसका विरोध क्यों किया? क्यों रियो द जनीरो से लेकर साओ पाउलो में लाखों लोग सड़कों पर उतरे? क्योंकि सरकार जनता का सारा पैसा स्टेडियम, साज-सज्जा और पर्यटन पर खर्च कर रही थी। वहीं बसों और अन्य जन सुविधाओं के खर्चे कम किये जा रहे थे। किराया वृद्धि हो रही थी। किराया वृद्धि के खिलाफ़ शुरू हुए आन्दोलनों में वर्ल्ड कप पर हो रहे खर्च का जमकर विरोध किया गया और सरकार द्वारा जनता की बुनियादी सुविधाओं पर न्यूनतम खर्च को लेकर अपना विरोध दर्ज कराया गया। अगर वर्ल्ड कप पर कुल किये जा रहे खर्च को ही सरकार शिक्षा पर खर्च करती तो ब्राज़ील के हर बच्चे को शिक्षा दी जा सकती थी। सरकार अगर इस खर्च को स्वास्थ्य पर करती तो करीब ब्राज़ील की अस्पतालों की बड़ी समस्या हल हो जाती। अगर हम अपनी कल्पना को और आगे दौड़ाये तो निश्चित ही हर क्षेत्र में ब्राज़ील जैसे देशों की कई बुनियादी समस्याओं को दूर किया जा सकता था। परन्तु हम वापस आते हैं क्योंकि खुद ब्राज़ील के मशहूर खिलाड़ी रोनाल्डो ने कहा था कि, ‘फुटबॉल स्टेडियम में खेली जाती है, अस्पतालों में नहीं’ और वर्ल्ड कप पर हो रहे निवेश का समर्थन किया था। यह वर्ल्ड कप फीफ़ा, उसके व्यापारी सहयोगी, ब्राज़ील की

निर्माण कम्पनियों और ब्राज़ील की ज़मीन पर गिद्ध की तरह नज़रें अटकायी हुई बड़ी-बड़ी कम्पनियों के लिए था। यह वर्ल्ड कप मुनाफ़ा कमाने वालों के लिए जश्न है और इसमें आम जनता का कुछ भी नहीं है। दरअसल मौजूदा ढाँचे के अन्दर यह उम्मीद करना कि पूँजी का निवेश जनता के हित में होगा यह अपने में ही ग़लत होगा।

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह वर्ल्ड कप फुटबॉल की धरती पर भले ही खेला गया हो पर यह ब्राज़ील की आम जनता के लिए नहीं था। यह महज़ फुटबॉल प्रेमी (अगर कोई न हो तब भी प्रचार उसे बना देगा) शरीर के भीतर उपभोक्ता आत्मा तक कुछ निश्चित विज्ञापनों द्वारा उपभोग का आह्वान था। ये खेल आज सिर्फ़ पूँजी की चुम्बक बन कर रह गये हैं। जिस तरह वर्ल्ड बैंक व आई.एम.एफ. जैसे संगठन वित्तीय पूँजी के निवेश के लिए रास्ता सुगम बनाते हैं और बड़ी-बड़ी इज़ारेदार कम्पनियों द्वारा (मुख्यतः उनके देश अमेरिका से) नियंत्रित होते हैं उसी प्रकार फीफ़ा जैसे संघ भी वित्तीय पूँजी और बड़ी-बड़ी इज़ारेदार कम्पनियों के निर्देशन पर ही चलते हैं। ब्राज़ील जैसी उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएँ ऐसे खेलों के लिए खूब ज़ोर-शोर से सट्टा लगाती हैं कि वर्ल्ड कप सरीखे खेल हों और बड़ी-बड़ी इज़ारेदार कम्पनियाँ निवेश करें। खुद अपने देश की जनता के पैसे को जन सुविधाओं पर खर्च करने की जगह सरकारें ऐसे खेलों के लिए जमकर पैसा बहाती हैं जिससे अधिक से अधिक विदेशी निवेशकों को बुलाया जा सके। यह इससे भी अधिक नंगे तौर पर प्रीमियर लीग सरीखे फॉर्मेट में होता है। चाहे वह इंग्लिश प्रीमियर लीग हो, ला लीगा हो या क्रिकेट में आई.पी.एल. सरीखी लीग हों। खेल का आयोजन महज़ विज्ञापन बेचने के लिए किया जाता है। मुख्य खेल नहीं है विज्ञापन हैं। खेल एक प्रयोजन होता है जिसके ज़रिये ये विज्ञापन टीवी आदि से जनता के कानों पर, आँखों पर बरसाये जाते हैं। मैस्सी, रोनाल्डो, नेमार, बेल सभी बस इज़ारेदार कम्पनियों के ब्राण्ड एम्बेसडर हैं और जूते, कपड़े, डिओडोरेंट, चड्डी, सूट, गाड़ी से लेकर सब कुछ बेचने वाले विज्ञापनों की कठपुतली हैं। फुटबॉल हो या कोई भी अन्य खेल सभी वित्तीय पूँजी के अनुसार चलते हैं।

मोदी की जापान यात्रा के निहितार्थ

● श्वेता

नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में गठित भाजपा सरकार के तीन महीने पूरे हो चुके हैं। इस दौरान मोदी ने भारतीय पूँजीपतियों के अलग-अलग प्रतिनिधिमण्डलों को साथ लेकर विदेशी बाज़ारों की तलाश और भारत में विदेशी पूँजी के नये अवसरों की खोज करने के मक़सद से दुनिया के अलग-अलग मुल्कों का दौरा किया। भूटान और नेपाल के बाद मोदी की पाँच दिवसीय जापान यात्रा को इसी कड़ी में देखा जा सकता है। इस यात्रा के दौरान अदानी, मित्तल, बिरला, चन्दा कोचर, गोदरेज़, अज़ीम प्रेमजी, किरण मजूमदार शॉ जैसे बड़े पूँजीपतियों (मोदी के शब्दों में ‘हैवीवेट्स’) का दल उनके साथ गया था। यात्रा के

अन्तिम चरण में मोदी ने अपने इन ‘हैवीवेट्स’ से अपने प्रदर्शन की प्रतिक्रिया भी माँगी। जैसे एक मुलाज़िम अपने मालिक से अपने प्रदर्शन के बारे में ‘फीडबैक’ लेता है ठीक उसी तरह मोदी ने पूँजीपतियों के प्रतिनिधिमण्डल से ‘फीडबैक’ माँगा कि कहीं उनकी चाकरी बजाने में कोई भूल-चूक तो नहीं हो गयी!

15 अगस्त को लाल क़िले से दिये गये अपने भाषण में मोदी ने भारत को एक “मैनुफैक्चरिंग हब” बनाने के सब्ज़बाग दिखाये थे और दुनिया भर के साम्राज्यवादियों को भारत में पूँजी निवेश करने के लिए पलक-पाँवड़े बिछाते हुए कहा था कि ‘कम मेक इन इण्डिया’ (आओ भारत में बनाओ)! मोदी की

जापान यात्रा को इसी सन्दर्भ में समझा जा सकता है। जापानी साम्राज्यवादियों को लुभाने के लिए अपनी यात्रा के दौरान मोदी ने अपने चिर-परिचित अन्दाज़ में सस्ती जुमलेबाजियों का जमकर सहारा लिया। उन्होंने जापानियों का स्वागत 'लाल फीते की जगह लाल कालीन' से करने की बात की और 'फेवीकोल से भी अधिक मजबूत जोड़' बनाने के जुमले को उछाला। पाँच दिवसीय यात्रा के दौरान भारत और जापान के बीच हुए समझौते के तहत जापान अगले पाँच वर्षों में भारत के निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में 35 अरब डॉलर का निवेश करेगा। जहाँ एक ओर 100 स्मार्ट सिटी बनाने, बुलेट ट्रेन दौड़ाने, गंगा सफाई जैसी परियोजनाओं में भारत को भारी पूँजी निवेश की दरकार है वहीं दूसरी ओर आर्थिक संकट के भँवर में फँसे जापानी साम्राज्यवादी भारत में पूँजी निवेश करके अतिलाभ निचोड़ने के लिए लार टपका रहे हैं। दोनों देशों के पूँजीपति वर्गों के हितों के इसी मेल की वजह से मोदी और जापानी प्रधानमंत्री शिंजो एबे ने एक-दूसरे की तारीफों के पुल बाँधे। एबे ने प्रोटोकॉल तोड़ते हुए मोदी को हवाई अड्डे पर खुद जाकर रिसीव किया और मोदी से हाथ मिलाने की जगह उनको गले लगाया। मोदी ने साक्षात दण्डवत होकर जापानी साम्राज्यवादियों को भरोसा दिलाया कि जापानी पूँजी निवेश के रास्ते में आने वाली सारी बाधाओं को किनारे कर दिया गया है। यही नहीं मोदी ने प्रधानमंत्री कार्यालय में 'जापान प्लस' नामक प्रकोष्ठ खोलने की भी घोषणा कर दी जिसके ज़रिये जापानी साम्राज्यवादियों को पूँजी निवेश में आने वाली दिक्कतों का पलक झपकते ही समाधान हो जायेगा।

गौरतलब है कि जापानी कम्पनियाँ व उनकी प्रबन्धन प्रणाली मजदूरों की हड्डियों को बेरहमी से निचोड़ने के लिए कुख्यात हैं। पिछले कुछ वर्षों में होण्डा, मारुति सुजुकी जैसी जापानी कम्पनियों के हड़ताली मजदूरों व उनके संघर्षों का बर्बर दमन करके भारत सरकार ने जापानी साम्राज्यवादियों के हितों की बखूबी सेवा की है। आने वाले समय में भारत सरकार और अधिक तत्परता के साथ इस सेवा को जारी रखेगी, इसी का भरोसा मोदी ने अपनी यात्रा के दौरान जापानी साम्राज्यवादियों को दिलाया है। इसकी पूर्वपीठिका श्रम क़ानूनों के ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करके मोदी सरकार पहले ही तैयार कर चुकी है। देशी-विदेशी पूँजीपतियों को सस्ती दरों पर कच्चा माल व ज़मीनें मुहैया कराने की तैयारियाँ जोर-शोर से की जा रही हैं। गौर करने वाली बात यह भी है कि जापानी दिये गये क़र्जों पर बड़ी सख्ती से ब्याज वसूलते हैं। भविष्य में इस ब्याज की अदायगी करों में बढ़ोतरी व मँहगे होते रोज़मर्रा के सामानों के रूप में आम मेहनतकश जनता की जेब से ही की जायेगी।

मोदी की जापान यात्रा का एक सामरिक पहलू भी है जो महत्वपूर्ण है। दक्षिण एशिया में भारतीय पूँजीपति वर्ग की क्षेत्रीय विस्तारवादी महत्वाकांक्षाएँ भी हैं और चीन का इस क्षेत्र में बढ़ता प्रभाव उसके लिए चिन्ता का विषय है। चीन ने श्रीलंका में बन्दरगाहों, एक्सप्रेस-वे व अन्य निर्माण परियोजनाओं में भारी पूँजी निवेश किया है। इसके अलावा चीन ने बंगलादेश में बन्दरगाहों, पाकिस्तान में ग्वादर बन्दरगाह, नेपाल में पनबिजली परियोजनाओं, तिब्बत से नेपाल-भूटान की सीमा तक रेलवे लाइन के निर्माण व म्यांमार में 1200 मील लम्बी तेल-गैस

पाइपलाइन बिछाने में पूँजी लगायी है। दक्षिण एशिया में चीन के बढ़ते प्रभाव को प्रतिसन्तुलित करने के मक़सद से ही अभी हाल ही में भारत ने भूटान में 10,000 मेगावाट की पनबिजली परियोजना और नेपाल में जलबिजली परियोजनाओं, परिवहन व संचार के क्षेत्र में पूँजी निवेश की योजनाओं को अमल में लाया है। मोदी की जापान यात्रा चीन के बढ़ते क्षेत्रीय प्रभाव को नियंत्रित करने से भी जुड़ी हुई है। साथ ही जापानी साम्राज्यवादी भी एशिया में चीन के बढ़ते प्रभुत्व से भयाक्रान्त हैं। चीन दक्षिणी चीन सागर के 80 प्रतिशत से भी अधिक क्षेत्र पर अपना दावा ठोक रहा है जो व्यापारिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण जलमार्ग है। भारत-जापान के बीच सामरिक साझेदारी हिन्द-प्रशान्त क्षेत्र में चीन के दबदबे को चुनौती देगी। एशिया में चीन की व्यापारिक एवं सामरिक शक्ति को प्रतिसन्तुलित करते हुए नये शक्ति सन्तुलन की धुरी निर्मित करना भारत और जापान दोनों देशों के पूँजीपति वर्ग की ज़रूरत है। लेकिन साथ ही भारत चीनी सामाजिक फासीवादी शासकों के साथ समझौते कर रहा है। सही कहें तो फासीवादी मोदी को भारत को 'मैनुफैक्चरिंग हब' बनाने में चीनी सामाजिक फासीवादियों से सीखने का ज़्यादा मिलेगा। आज वास्तव में दुनिया भर के फासीवादी और साम्राज्यवादी चीनी संशोधनवादियों और सामाजिक फासीवादियों द्वारा मजदूरों के दमन और उन पर नियन्त्रण कायम रखने के मॉडल को ईर्ष्या और प्रशंसा के मिले-जुले भाव के साथ देखते हैं! भारत भी अपनी आर्थिक कुशलता और सफलता के लिए चीन को ही एक पैमाने के रूप में देखता है। लेकिन जापान के साथ भारत के रिश्ते अलग हैं। उसे जापानी पूँजी-निवेश की आवश्यकता है।

भारत और जापान के बीच पारस्परिक सम्बन्धों को "विशेष" सामरिक व वैश्विक साझेदारी के स्तर तक ले जाना दोनों पूँजीवादी देशों की इसी ज़रूरत को दर्शाता है। इसके तहत जापान ने हिन्दुस्तान एरोनॉटिक्स लिमिटेड समेत 6 भारतीय प्रतिष्ठानों पर से 1998 के पोखरण नाभिकीय परीक्षण के बाद से लगा प्रतिबन्ध हटा लिया है। साथ ही इस सामरिक साझेदारी के तहत जापान भारतीय नौसेना को पानी व हवा दोनों में काम करने वाले 6 मार्क 2 (यूएस 2) जल-नभ (एंगीबियन) विमान व उससे सम्बन्धित प्रौद्योगिकी देने के लिए राज़ी हुआ है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यह जापान द्वारा किसी भी देश के साथ किया गया पहला सामरिक सौदा होगा। जापान ने भारत के लिए रक्षा उपकरणों की बिक्री व प्रौद्योगिकी हस्तान्तरण के नियमों को काफी लचीला कर दिया है।

क्षेत्रीय पैमाने पर जहाँ एक ओर भारत चीन से होड़ करता दिखायी पड़ता है वहीं दूसरी ओर विश्व के पैमाने पर अमेरिकी वर्चस्व को चुनौती दे रहे 'ब्रिक्स' के मोर्चे पर वह चीन के साथ भी नज़र आता है। विश्वबैंक व आईएमएफ के समान्तर 'ब्रिक्स' द्वारा एक नये विकास बैंक के निर्माण का मक़सद विश्व व्यापार में अमेरिकी डॉलर के वर्चस्व को चुनौती देना है। भारतीय पूँजीपति वर्ग अपने क्षेत्रीय व अन्तरराष्ट्रीय हितों के बीच बेहद चालाकी से सामंजस्य स्थापित कर रहा है। वह अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा व नये वैश्विक धुवीकरणों का लाभ उठाते हुए अपने लिए अधिकाधिक अनुकूल विकल्पों

का निर्माण व विस्तार कर रहा है। एशिया के अलग-अलग देशों के दौरे व आस्ट्रेलिया से यूरेनियम सौदे व अन्य व्यापारिक समझौतों के ज़रिये भारत अपने तमाम व्यापारिक साझेदार मुल्कों से आसानी से मोल-तोल करने के रास्ते खोल रहा है।

बहरहाल, इन यात्राओं के दौरान होने वाले व्यापारिक

समझौतों का लाभ तो देश के पूँजीपति वर्ग और मुट्ठीभर मध्यवर्गीय तबके तक ही सीमित रहने वाला है। मेहनतकशों और मजदूर वर्ग के लिए तो इसका एक ही परिणाम निकलने वाला है कि उन्हें और अधिक पाशविक हालातों में अपना जांगर खटाना होगा।

भारत में वॉलमार्ट

• वारुणी

खुदरा क्षेत्र में भारत में करीब 1250 बिलियन डॉलर का बाज़ार उपलब्ध है जिसकी वृद्धि की दर हर साल करीब 7.2% है। यानी कि “भारत भूमि वॉलमार्ट के लिए बहुत ही उपजाऊ ज़मीन है”- यह पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने वॉलमार्ट के सी. ई.ओ. से कहा था। यह साल 2005 से पहले की बात थी जब खुदरा व्यापार क्षेत्र में विदेशी निवेश को मंजूरी नहीं मिली थी। परन्तु तब भी अप्रत्यक्ष तौर पर विदेशी निवेश सम्भव था और वॉलमार्ट का भारत में आना पहले ही तय था। अप्रत्यक्ष तौर पर इसकी मंजूरी ने पहले ही प्रत्यक्ष तौर पर इसकी मंजूरी की ज़मीन तैयार कर दी थी। यही पूँजीवाद की गति का अगला चरण था जो अब हमारे सामने है।

खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी देने की बात कांग्रेस सरकार के राज में ही हो रही थी। इस बात को लेकर संसदीय सुअरबाड़े में खूब हो-हल्ला मचा। तमाम पार्टियाँ - भाजपा से लेकर सारी वामपन्थी पार्टियाँ इसके विरोध में थीं। फिर सरकार ने रक्षात्मक रवैया अपनाकर खुद यह ऐलान किया कि अब राज्य सरकारों के ऊपर होगा कि वह खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की अनुमति देती हैं या नहीं। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को खुदरा क्षेत्र में मंजूरी मिलना कोई नयी परिघटना नहीं बल्कि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों का एक स्वाभाविक अगला क़दम था। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विकसित पूँजीवादी देशों में उत्पादकता बढ़ने के साथ-साथ उत्पादक निवेश की सम्भावना लगातार सन्तुष्टि बिन्दु तक पहुँच रही है। बाज़ार उत्पादन इतना हो जाता है कि उस देश में उसकी पूरी खपत नहीं हो सकती, तब उस माल को खपाने के लिए उन विकसित पूँजीवादी देशों को नये बाज़ारों की ज़रूरत होती है और इसकी खोज तीसरी दुनिया के देशों में पूरी होती है जहाँ पूँजीवादी विकास के साथ एक नया उपभोक्ता वर्ग तैयार हुआ है। जहाँ तक भारत की बात है तो यह तमाम देशों के पूँजीपति वर्ग के लिए बहुत ही उपयोगी ज़मीन है। एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में खुदरा व्यापार क्षेत्र में करीब 500 बिलियन डॉलर की खरीद-फ़रोख़्त की सम्भावना है जो 2020 तक करीब 1 ट्रिलियन को भी पार कर सकता है। यही कारण है कि वालमार्ट, टेस्को जैसी विदेशी कम्पनियाँ यहाँ निवेश के लिए लालायित होती हैं। और अब तो इनको पूरी खुली छूट मिल गयी है। अब सिर्फ़ देशी ही नहीं बल्कि विदेशी पूँजी भी उपभोक्ता क्षेत्र में जनता को लूटने का काम करेगी। दोनों के

बीच हिस्से के बँटवारे का झगड़ा भी रहेगा और आपसी प्रतिस्पर्द्धा भी मौजूद रहेगी कि कौन कितना लूट-खसोट का ताण्डव करेगा।

ये तो मौजूदा हालात हैं लेकिन जब प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को मंजूरी नहीं मिली थी तब भारत में प्रवेश पाने के लिए वॉलमार्ट जैसी कम्पनियों ने कितना पैसा व कितनी तिकड़में भिड़ायी थीं इसे जानना भी ज़रूरी है। वॉलमार्ट ने 2008 में भारत में खुदरा व्यापार में प्रवेश करने की कोशिशों पर ही 1.65 मिलियन डॉलर खर्च कर दिये थे। सरकार ने थोक व्यापार में विदेशी निवेश को मंजूरी दे दी थी और इसी के ज़रिये वॉलमार्ट खुदरा क्षेत्र में घुसने की लगातार कोशिश कर रहा था। वॉलमार्ट ने भारती ग्रुप के साथ 50:50 का ज्वाइंट वेंचर बनाया था जिसे भारती-वॉलमार्ट प्राइवेट लिमिटेड का नाम दिया गया। भारती ग्रुप का ही एक पार्ट भारती रिटेल होल्डिंग लिमिटेड है जिसका मुख्यतः खुदरा क्षेत्र में व्यापार है। इज़ी-डे सुपरमार्केट्स इसी के द्वारा चलायी जाती है। बाद में इसे सीडार सपोर्ट सर्विसेज के नाम से चलाया जाने लगा जिसका मुख्य क्षेत्र कंसल्टिंग सर्विसेज़ बताया गया। ज्ञात हो तभी कंसल्टिंग सर्विसेज में विदेशी निवेश को मंजूरी थी और वॉलमार्ट ने सीडार सपोर्ट सर्विसेज में विदेशी निवेश किया था। करीब 500 डॉलर मिलियन का निवेश किया गया था। इस प्रकार व्यापार क्षेत्र के अपने ऑब्जेक्टिव क्लॉज़ को बदलकर वॉलमार्ट ने खुदरा क्षेत्र में निवेश किया था। वॉलमार्ट ने पैटन बॉक्स नामक एक लॉबीइंग फर्म द्वारा भारत में प्रवेश करने की तिकड़म भिड़ाई तब जाकर यह सम्भव हुआ था। यदि लॉबीइंग की बात की जाये तो आज यह किस्म का व्यापार बन गया है। ये लॉबीइंग फर्म्स बिचौलिये का काम करती हैं जो व्यापारी वर्ग व सरकार के बीच साँठ-गाँठ करवाती हैं। न सिर्फ़ बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मालिक बल्कि खुद कई देशों की सरकारें अपना सिक्का जमाने के लिए इन लॉबीइंग फर्म्स को पैसे खिलाती हैं। खुद भारत में लॉबीइंग व्यापार का एक बड़ा आधार बन गया है। कम से कम तीस फर्म्स तो अकेले दिल्ली में ही मौजूद हैं। वॉलमार्ट के अलावा भी डैल व बॉइंग जैसी कम्पनियों पर भी लॉबीइंग के केस दर्ज हो चुके हैं। जब खुले तौर पर यहाँ विदेशी पूँजी को लूट की छूट दी जा रही है और जहाँ कानूनी लूट को जायज़ ठहराया जाता है वहाँ गैरकानूनी लूट तो बार-बार सर उठायेगी ही। अब

(पृष्ठ 44 पर जारी)

पंजाब में काले क़ानून के खिलाफ़ संयुक्त मोर्चा

पंजाब सरकार द्वारा पारित घोर फासीवादी काले क़ानून 'पंजाब सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति नुक़सान रोकथाम क़ानून-2014' को रद्द करवाने के लिए पंजाब के मज़दूरों, किसानों, सरकारी मुलाज़मों, छात्रों, नौजवानों, स्त्रियों, जनवादी अधिकार कार्यकर्ताओं के संगठन संघर्ष की राह पर हैं। करीब 40 संगठनों का 'काला क़ानून विरोधी संयुक्त मोर्चा, पंजाब' गठित हुआ है। इस संयुक्त मोर्चे के आह्वान पर 11 अगस्त को पंजाब के सभी जिलों में डी.सी. कार्यालयों पर रोषपूर्ण प्रदर्शन किये गये हैं। "नुक़सान रोकथाम काला क़ानून रद्द करो!", "दमनकारी पंजाब सरकार मुर्दाबाद", "लोक एकता जिन्दाबाद", आदि जोशीले नारे लगाते हुए प्रदर्शनकारियों ने नुक़सान रोकथाम के नाम पर जनान्दोलनों को कुचलने के लिए बनाये गये काले क़ानून को रद्द करवाने के लिए रोषपूर्ण आवाज़ बुलन्द की। हर ज़िले में डिप्टी कमिशनर को माँग पत्र सौंपे गये। पंजाब के राज्यपाल के नाम भेजे गये इन माँग पत्रों में पंजाब सरकार से इस क़ानून को रद्द करने की माँग करते हुए कहा गया कि अगर यह क़ानून रद्द नहीं किया जाता तो इसके खिलाफ़ भविष्य में उठने वाले जनसंघर्ष की जिम्मेदारी पंजाब सरकार की होगी।

बठिण्डा में प्रदर्शन को रोकने के लिए पुलिस ने करीब 300 प्रदर्शनकारियों को गिरफ़्तार कर लिया। प्रदर्शन स्थल पर पहुँचने से रोकने के लिए विभिन्न जगहों पर नाके लगा दिये गये। इसके बावजूद लोगों ने शहर में प्रदर्शन आयोजित किया और गिरफ़्तारियाँ दीं। शाम को ही पुलिस ने सभी गिरफ़्तार लोगों को छोड़ा। लुधियाना में भारी बारिश के बावजूद बड़ी संख्या में जुटे औद्योगिक मज़दूरों, किसानों, सरकारी मुलाज़िमों, नौजवानों ने ज़ोरदार प्रदर्शन किया। शहर में औद्योगिक मज़दूरों ने प्रदर्शन से पहले श्रम विभाग से डी. सी. कार्यालय तक रोषपूर्ण पैदल मार्च भी किया।

पंजाब भर में हुए प्रदर्शनों को विभिन्न संगठनों के वक्ताओं ने सम्बोधित करते हुए कहा कि यह क़ानून सरकार ने रैली, धरना, प्रदर्शन, हड़ताली आदि जनकारवाइयों के दौरान तोड़फोड़-अगजनी आदि रोकने के बहाने से बनाया है लेकिन सरकार का असल मकसद हक़-अधिकारों के लिए हो रहे जनसंघर्षों को कुचलना है। सरकार की धनिक वर्गों के पक्ष में लागू की जा रही उदारीकरण, निजीकरण, विस्वीकरण की नीतियों के कारण आज मज़दूरों, किसानों, आदि मेहनतकश वर्गों की हालत बेहद खराब हो चुकी है। ग़रीबी, बेरोज़गारी तेज़ी से बढ़ी है। चारों ओर जनता में आक्रोश है और जनसंघर्ष फैलते जा रहे हैं। इन हालात में जनता को जहाँ एक तरफ़ धर्मो-जातियों के नाम पर आपस में लड़ा-मराकर बाँटने की कोशिशें हो रही हैं वहीं हुक्मरान जनता पर दमन भी बढ़ते जा रहे हैं। वक्ताओं ने कहा कि हक़, सच, इंसान के लिए संघर्ष कर रहे संगठन कभी भी आगजनी, तोड़फोड़ जैसी कारवाइयों नहीं करते बल्कि सरकारों और पूँजीपतियों द्वारा ही ऐसी कारवाइयों जनसंघर्षों को बदनाम व विफल करने के लिए की जाती हैं। अब पंजाब सरकार ने इस क़ानून के ज़रिये संघर्ष करने वाले लोगों को पाँच साल तक की जेल, तीन लाख रुपए तक का जुर्माना और नुक़सान पूर्ति की सख्त सजाएँ देने की फासीवादी साज़िश रची है। नुक़सान पूर्ति के लिए

संघर्षशील लोगों की ज़मीनें ज़ब्त करने के प्रावधान इस काले क़ानून में रखे गये हैं। हड़ताल को तो इस क़ानून के ज़रिये अप्रत्यक्ष रूप से गैरक़ानूनी ही बना दिया गया है। वक्ताओं ने कहा कि पहले भी हुक्मरानों का जनता पर जुल्म कम नहीं था लेकिन अब भारत के शासक वर्गों द्वारा लूट, दमन, अन्याय अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। केन्द्र में मोदी सरकार के गठन के बाद जनता पर पूँजीपति वर्ग का हमला और भी तेज़ हो गया है। श्रम क़ानूनों में मज़दूर विरोधी संशोधन किये जा रहे हैं। मोदी सरकार के आने के बाद महँगाई में अत्यधिक वृद्धि हुई है। करों का बोझ ग़रीब जनता पर और भी अधिक लादा जा रहा है। सब्सिडियों में भारी कटौती हो रही है। इन हालात में 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी जायदाद नुक़सान रोकथाम) बिल-2014' जैसे भयानक क़ानूनों के बिना हुक्मरानों की गाड़ी चल ही नहीं सकती।

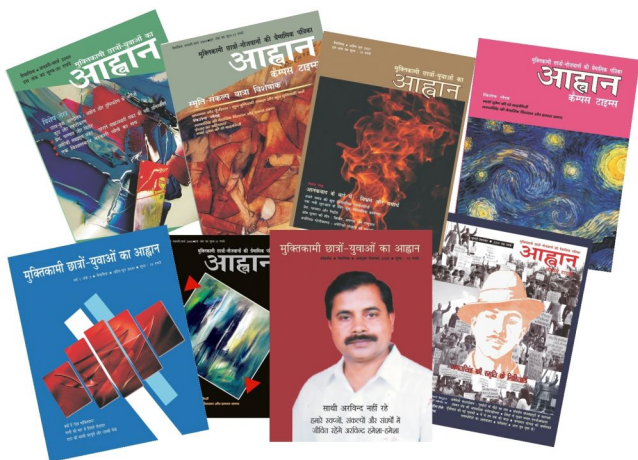
11 अगस्त के इन ज़ोरदार प्रदर्शनों के बाद 17 अगस्त को 'काला क़ानून विरोधी साझा मोर्चा, पंजाब' की बैठक में **माझा, दुआबा व मालवा स्तर पर क्रमशः अमृतसर (29 सितम्बर), जालन्धर (30 सितम्बर), व बरनाला (1 अक्टूबर) में विशाल रैलियाँ करने का फैसला किया गया है।**

पंजाब भर में अर्थी फूँक प्रदर्शन

शोषण-अन्याय के खिलाफ़ जनता की हक़, सच, इंसान की आवाज़ दबाने के लिए पंजाब सरकार द्वारा पारित किये गये काले क़ानून 'पंजाब (सार्वजनिक व निजी सम्पत्ति नुक़सान रोकथाम) बिल-2014' रद्द करवाने के लिए पंजाब के तीन दर्जन से अधिक संगठनों ने 'काला क़ानून विरोधी संयुक्त मोर्चा' बनाकर संघर्ष छेड़ दिया है। 11 अगस्त के पंजाब के सभी जिलों में डी.सी. कार्यालयों पर संयुक्त मोर्चा के बैनर तले ज़ोरदार रोषप्रदर्शन हुए हैं। 11 अगस्त के रोष प्रदर्शनों की तैयारी के लिए 5 अगस्त से 10 अगस्त तक गाँवों-मोहल्लों, बस्ती, तहसील आदि स्तरों पर पंजाब सरकार की अर्थियाँ फूँकी गयीं। जिला लुधियाना और जिला फतेहगढ़ साहिब में टेक्सटाइल-हौज़री कामगार यूनियन, कारख़ाना मज़दूर यूनियन और नौजवान भारत सभा ने भी काले क़ानून के खिलाफ़ अर्थी फूँक प्रदर्शन आयोजित किये। टेक्सटाइल हौज़री कामगार यूनियन ने ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, पुडा मैदान और मेहरबान में अर्थी फूँक प्रदर्शन किए। कारख़ाना मज़दूर यूनियन ने ढण्डारी खुर्द व राजीव गाँधी कालोनी में अर्थी फूँक प्रदर्शन आयोजित किये। नौजवान भारत सभा ने मण्डी गोबिन्दगढ़, पख़ोवाल, जोधां आदि जगहों पर टी. एस.यू., डी.ई.एफ., आर.टी.आई. एक्टिविस्ट ग्रुप आदि संगठनों से साथ साझे रूप में अर्थी फूँक प्रदर्शन किये।

अर्थी फूँक प्रदर्शनों के दौरान वक्ताओं ने कहा कि पूँजीवादी हाकिमों की नीतियों के चलते जनता की हालत बहुत बदतर हो चुकी है। हुक्मरान आने वाले दिनों में उठ खड़े होने वाले भीषण जनान्दोलनों से भयभीत है। जनता की आवाज़ सुनने की बजाये सरकारें जन आवाज़ को ही कुचल देना चाहती हैं। इसीलिए अब काले क़ानून बनाये जा रहे हैं।

— पंजाब संवाददाता



मुक्तिकामी छात्रों-युवाओं का आह्वान

आह्वान के नियमित पाठकों के लिए एक विशेष उपहार :
आह्वान के सभी उपलब्ध अंकों का सेट मात्र रु. 200 में!

(डाक व्यय अतिरिक्त)

दिलचस्पी रखने वाले सभी पाठक लिखें :

सम्पादकीय कार्यालय :

बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-110094

फोन : 9211662298

खत्म करो पूँजी का राज लड़ो, बनाओ लोक-स्वराज!



हम पूँजीवादी संसदीय जनतंत्र की खर्चीली धोखाधड़ी, लूटतंत्र और दमनतंत्र को सिर से खारिज करते हैं। हम पंचायती राज की कपटपूर्ण सरकारी नौटंकी को भी सिर से खारिज करते हैं। समय के गर्भ में आज महत्त्वपूर्ण बदलाव के बीज पल रहे हैं। विकल्प के निर्माण के लिए उन्हें ही आगे आना होगा जो ठगे जा रहे हैं, लूटे जा रहे हैं और आवाज़ उठाने पर कुचले जा रहे हैं। इस व्यवस्था में जिनका कोई भविष्य नहीं है, उन्हें ही नयी व्यवस्था बनाने के लिए आगे आना होगा।

साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का एक-एक दिन हमारे लिए भारी है। यह घुटन, यह सड़ांध अब ज़िन्दा आदमी के बर्दाश्त के काबिल नहीं। हमें उठ

खड़ा होना होगा और अपने ज़िन्दा होने का सबूत देना होगा, वरना आने वाली पीढ़ियों को इतिहास क्या बतायेगा कि हम क्या कर रहे थे जब देश ज्वालामुखी के दहाने पर बैठा हुआ था, तबाही के नर्ककुण्ड में झुलस रहा था?

यही कारण है कि हम विश्व पूँजीवादी तंत्र से नाभिनालबद्ध पूँजीवादी व्यवस्था को चकनाचूर कर पूरे समाज के आर्थिक आधार और ऊपरी ढाँचे का न्याय और समानता के आधार पर पुनर्गठन करने के लिए क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य का नारा बुलंद करते हैं। इस नारे का मतलब है – उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे पर उत्पादन करने वाले सामाजिक वर्ग काबिज़ हों, फैसेल की पूरी ताक़त उन्हीं के हाथों में हो। इस नारे का सारतत्व है – 'सारी सत्ता मेहनतकश को!'

...परिवर्तनकामी छात्रों-युवाओं को नये सिर से अपने क्रान्तिकारी संगठन और जुझारू संघर्ष संगठित करने होंगे और उन्हें मेहनतकशों के संघर्षों से जोड़ना होगा। उन्हें शहीदेआज़म भगतसिंह के सन्देश को याद करते हुए क्रान्ति का सन्देश कल-कारखानों और खेतों-खलिहानों तक लेकर जाना होगा। क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों को एक नये सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन के सांस्कृतिक कार्यभारों को पूरा करने में सन्नद्ध हो जाना होगा। स्त्रियों की आधी आबादी की जागृति और लामबन्दी के बिना कोई भी सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं। मेहनतकशों, छात्रों-युवाओं, बुद्धिजीवियों सभी मोर्चों पर स्त्रियों की भागीदारी बढ़ाना सफलता की बुनियादी शर्त है। साथ ही स्त्री आन्दोलन को कुलीन मध्यवर्गीय दायरे, एन.जी.ओ. पन्थी सुधारवादी गलाज़त और निष्क्रिय विमर्शवादी अस्मितावादी वैचारिक विभ्रम के दलदल से बाहर निकालकर जुझारू संघर्षमुखी और व्यवस्था-परिवर्तनवादी दिशा देनी होगी।

बिगुल मज़दूर दस्ता, नौजवान भारत सभा, दिशा छात्र संगठन,

स्त्री मुक्ति लीग और स्त्री मज़दूर संगठन

द्वारा चलाये जा रहे

क्रान्तिकारी लोक स्वराज्य अभियान की ओर से जारी